आपकी आशाओं का सुन्दर प्रतिबिम्ब

सितम्बर 2025

क्रान्ति

मासिक

सहयोग राशि
30/-₹

नव-निरक्षरता :

डिजिटल युग में साक्षरता की नई चुनौती



शपथ है दिन चढ़े की!
और शपथ है रात्रि की, जब
उसका सन्नाटा छा जाये! (हे नबी!) तेरे
पालनहार ने तुझे न तो छोड़ा और ने ही
विमुख हुआ। और निश्चय ही आगामी युग
तेरे लिए प्रथम युग से उत्तम है। और तेरा
पालनहार तुझे इतना देगा कि तू प्रसन्न हो
जायेगा। क्या उसने तुझे अनाथ पाकर शरण
नहीं दी? और तुझे पथ भूला हुआ पाया, तो
सीधा मार्ग नहीं दिखाया? और
निर्धन पाया, तो धनी नहीं
कर दिया?

(क़ुरआन, 93:1-8)

Website Link :
www.kantimasik.com

संपादक
शिब्ली अरसलान
abuaniqa@gmail.com

प्रबंधक
नईम ख़ान
+91 9891160829

सहयोग राशि
एक प्रति 30/- रु॰ एक वर्ष 350/- रु॰
पांच वर्ष 1500/- रु॰ आजीवन रु॰ 5000/
सऊदी अरब और खाड़ी के देशों के लिए 110/- रियाल
यूरोप व अमेरिका के लिए 40/- US डॉलर

ख़रिदार बनने, एजेंसी लेने, प्रचार-प्रसार एवं प्रबंधकीय मामलों के लिए सम्पर्क करें :

कार्यालय :
कान्ति मासिक, डी-314, दावत नगर,
अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर,
ओखला, नई दिल्ली-110025

हेल्पलाइन न॰
9818799223

Account Detail
NAME : KANTI
A/C NO : 0990839195
IFS CODE : IDIB000J029
TYPE : CURRENT
BANK : INDIAN BANK
BRANCH : JAMIA MILLIA ISLAMIA
NEW DELHI - 110025
चेक / ड्राफ़्ट 'कान्ति' के नाम से बनवाएं

प्रकाशक मुहम्मद अहमद द्वारा दावत
ट्रस्ट (रजि॰), डी-314 दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव,
जामिया नगर, नई दिल्ली-110025 से प्रकाशित एवं
Printer : Akhilesh Singh
Press : AARYA PRINTERS
201, Ground Floor, DSIDC Complex
Okhla Industrial Area phase-1,
New Delhi-110020
Editor : Shibli Arsalan

संस्था की लिखित अनुमति के बिना सम्पूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित है।

वर्ष 35 अंक 03 सितम्बर 2025

आपकी आशाओं का सुन्दर प्रतिबिम्ब

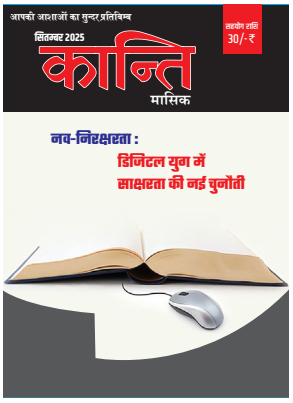

कान्ति मासिक

इस अंक में

मूल प्रश्न 04
ज्ञान, तकनीक और नैतिकता : साक्षरता का नया समीकरण
शिब्ली अरसलान

चिंतन 07
सच्चा वैभव
रिज़वान अहमद

सौंदर्य बोध 11
क्या हम 'सुनना' जानते हैं?
तबाना नूरी

मुख्य स्तंभ 15
नव-निरक्षरता : डिजिटल युग में साक्षरता की नई चुनौती
सुफ़ियान अहमद

अभिमत 19
ग्रामीण भारत में साक्षरता के बाद अगला पड़ाव डिजिटल साक्षरता
नेहा दंत्रे

समाधान 22
साक्षरता का सार्थक संदेश
लुबना सबूब

कविता 25
हमेशा से
ओमप्रकाश बजाज

पर्यावरण 26
स्वच्छ ऊर्जा अब विकल्प नहीं, आवश्यकता है
डॉ. प्रदीप कुमार

दृष्टिकोण 29
भारत का भविष्य : आंकड़े, आशंकाएं और अपेक्षाएं
मयसम ज़ारा

प्रकाश स्तंभ 33
न्याय : प्रक्रिया नहीं, परम मूल्य
अबरार हसन

विचारणीय 36
महिला सुरक्षा संदेशों की ग़लत व्याख्या
सुफ़ियान अहमद

इतिहास का सच और सच का इतिहास 39
डीयू : पाठ्यक्रम में पूर्वाग्रहों को शामिल करने की साज़िश
डॉ. अभय कुमार

सेहत 43
मानसिक स्वास्थ्य का नया परिदृश्य
मिरात अहमद

करियर 46
AI युग में करियर की नई दिशा : स्किल-बेस्ड एजुकेशन
संपादन प्रभाग

आख़िरी पन्ना 49
नैतिक प्रेरणा का सर्वोत्तम स्रोत
सायेमा हुसैन

मूल प्रश्न



शिब्ली अरसलान

ज्ञान, तकनीक और नैतिकता : साक्षरता का नया समीकरण

हर वर्ष 8 सितम्बर को 'अंतर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस' मनाया जाता है, जिसे यूनेस्को (UNESCO) ने 1966 में प्रारम्भ किया था। इस वर्ष इसकी थीम रखी गई है — "डिजिटल युग में साक्षरता को बढ़ावा देना" (Promoting Literacy in the Digital Era)। अंकों और संख्याओं की दुनिया का वह इंकलाब, जिसे हम "डिजिटल क्रांति" कहते हैं, मानव सभ्यता की विकास यात्रा का सबसे महत्वपूर्ण पड़ाव है। यह वस्तुतः आधुनिक प्रौद्योगिकी क्रांति का ही विस्तार है, और यह प्रौद्योगिकी क्रांति, औद्योगिक क्रांति के युग का एक नया अध्याय है।

डिजिटल तकनीक का उपयोग जब कंप्यूटर, स्मार्टफोन और कैमरों जैसे उपकरणों में हुआ, तो देखते ही देखते पूरी दुनिया बदल गई। डिजिटल घड़ियाँ, डिजिटल कैमरे, डिजिटल संगीत और कंप्यूटर प्रोग्राम — ये सभी डिजिटल तकनीक के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। डिजिटल क्रांति ने सब कुछ बदल दिया। आर्थिक और व्यवसायिक क्षेत्र से लेकर शैक्षिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों तक इसके स्पष्ट प्रभाव देखे जा सकते हैं। अब 'डिजिटल व्यवसाय', 'डिजिटल शिक्षा' और यहाँ तक कि 'डिजिटल पॉलिटिक्स' जैसी शब्दावलियाँ प्रचलन में हैं।

आज साक्षरता दोहरी हो चुकी है – अक्षरों का ज्ञान और डिजिटल तकनीक का ज्ञान, दोनों ही आधुनिक समय की जटिलताओं को समझने के लिए आवश्यक हैं।

डिजिटल परिवर्तन (Digital Transformation) शब्द का प्रयोग उन प्रक्रियाओं के लिए किया जाता है, जो व्यवसायों और संगठनों को आधुनिक डिजिटल तकनीकों को अपनाने और प्रयोग करने में मदद करती हैं — जैसे ऑनलाइन लेनदेन, क्लाउड कंप्यूटिंग और सोशल मीडिया।

सबसे बड़ा लाभ और परिवर्तन व्यवसाय तथा शिक्षा जगत में आया है। सीखने-सिखाने के तरीक़े और प्रक्रियाएँ पूरी तरह बदल गई हैं। आज 'डिजिटल साक्षरता' (Digital Literacy) लोकप्रिय शब्द और नारा बन चुका है। डिजिटल शिक्षा का अर्थ है — शिक्षा देने और प्राप्त करने के लिए डिजिटल तकनीकों और उपकरणों का प्रयोग, जिसमें कंप्यूटर, इंटरनेट और सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के अन्य साधन शामिल हैं। शिक्षा के डिजिटलीकरण ने सीखने के अनुभव को अधिक आकर्षक, व्यापक और समावेशी बना दिया है।

इस वर्ष की थीम आधुनिक युग में

साक्षरता की चुनौती में डिजिटल दक्षता का नया आयाम जोड़ती है। अर्थात, यह स्पष्ट करती है कि डिजिटल युग में केवल अक्षर-ज्ञान पर्याप्त नहीं है; डिजिटल तकनीक का ज्ञान भी उतना ही आवश्यक है। इस युग में यदि कोई व्यक्ति डिजिटल साधनों का उपयोग नहीं कर पाता, तो उसका केवल पढ़ा-लिखा होना अधूरी साक्षरता माना जाएगा।

वास्तव में, ज्ञान का स्वरूप बदल चुका है। इस बदलाव से तालमेल न बैठाने वाला व्यक्ति साक्षर नहीं कहलाएगा। यदि अक्षर-ज्ञान के बिना व्यक्ति का ज्ञान मौखिक और प्रत्यक्ष अनुभवों तक सीमित रहता है, तो डिजिटल निरक्षरता के साथ उसका ज्ञान संकीर्ण और स्थानीय हो जाता है। साक्षरता का उद्देश्य केवल अक्षर और शब्दों की पहचान नहीं, बल्कि मानव गरिमा (Human Dignity) और अधिकारों की पहचान, तथा जीवन की जटिलताओं और समाज की सच्चाइयों को समझने की क्षमता विकसित करना है। डिजिटल साक्षरता इस उद्देश्य को पूरा करने का एक सशक्त साधन है।

आज साक्षरता दोहरी हो चुकी है — अक्षरों का ज्ञान और डिजिटल तकनीक का ज्ञान, दोनों ही आधुनिक समय की जटिलताओं को समझने के लिए आवश्यक हैं।

डिजिटल युग की नई चुनौती डिजिटल तकनीक के सुरक्षित और अर्थपूर्ण प्रयोग की है। ज्ञान और शक्ति का सीधा संबंध है; इतिहास में सदैव शक्ति उन्हीं के पास रही है, जिनके पास ज्ञान रहा। किंतु शक्ति के सही प्रयोग के लिए नैतिक मूल्यों का होना अत्यंत आवश्यक है। जब ज्ञान नैतिकता से अलग हो जाता है, तो यह विनाश का कारण बनता है। डिजिटल युग में यह खतरा कई गुना बढ़ गया है।

आज डिजिटल साधनों से उत्पन्न

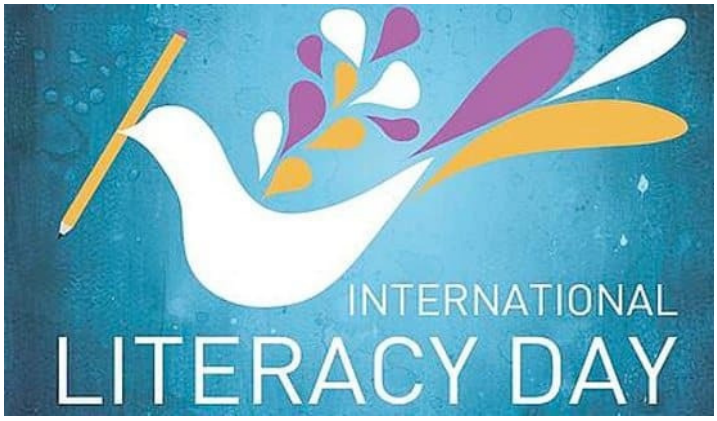

'ज्ञान का सैलाब' अक्सर दृष्टिहीन और गैर-जिम्मेदार है। सूचना पर 'सोचना' गौण हो गया है। बिना सोचे-समझे हर प्रकार की सूचना को आगे बढ़ाना इस युग का नारा बन चुका है।

इसी संदर्भ में "नव-निरक्षरता" (Neo-Illiteracy) की चर्चा महत्वपूर्ण है। इसके दो प्रमुख अर्थ हैं–

1. पहला अर्थ : वे लोग जो कंप्यूटर का उपयोग करने में सहज नहीं हैं और इस कारण ऑनलाइन दुनिया में सफलतापूर्वक नहीं चल पाते। इनमें अक्सर वे बड़े आयु के लोग होते हैं, जो कंप्यूटर के साथ बड़े नहीं हुए और मानते हैं कि अब इंटरनेट कौशल सीखने की न तो जरूरत है, न समय। साथ ही वे लोग, जो ऐसे क्षेत्रों में रहते हैं जहाँ कंप्यूटर और इंटरनेट का पर्याप्त प्रसार नहीं है, जैसे गरीब देशों के लोग। आश्चर्य की बात है कि अमेरिका जैसे विकसित देशों के लोग भी इस श्रेणी में आते हैं।

2. दूसरा अर्थ : वे लोग जो आसानी से ऑनलाइन पहुंच तो जाते हैं, लेकिन वहां मिलने वाली जानकारियों के जाल में फंस जाते हैं। ये लोग डिजिटल प्लेटफॉर्म पर फैली मिथ्या सूचनाओं, अफवाहों, फर्जी पोस्टिंग और धोखेबाज़ी के प्रति संशयशील नहीं होते और न ही तथ्य-जाँच (Fact-Checking) की कला जानते हैं। इन्हें कमेंट्री और समाचार रिपोर्टिंग के बीच का अंतर भी नहीं मालूम होता।

आज डेटा और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) के माध्यम से समाज को ग़लत दिशा में प्रभावित किया जा रहा है। फेक न्यूज़, साइबर क्राइम और डिजिटल मैनीपुलेशन की घटनाएं आम हैं।

यहीं पर डिजिटल नैतिकता (Digital Ethics) की आवश्यकता सामने आती है। केवल तकनीकी दक्षता (Technical Skill) पर्याप्त नहीं है — हमें डिजिटल नैतिकता की भी उतनी ही जरूरत है। इसी अंक के स्थायी स्तंभ 'समाधान' में इस विषय पर विस्तृत लेख शामिल किया जा रहा है। ■■

कान्ति के वे सब्सक्राइबर

जिन्होंने अभी तक अपनी ख़रीदारी की रक़म जमा नहीं की है,

बराय मेहरबानी

इस QR Code

के ज़रिये जल्द अदायगी करें।

Name: KANTI

Pay Directly to: kanti8920589292@indianbk

नोट :

अदायगी के बाद

स्क्रीनशॉट

इस नम्बर पर

(9818799223)

ज़रूर भेजें।



सच्चा वैभव

आज के दौर में जब चारों ओर तकनीकी प्रगति, आर्थिक उपलब्धियों और भौतिक विकास की बहार है, तब भी मनुष्य की आत्मा विचलित है। हर ओर तनाव, अशांति और बेचैनी व्याप्त है। व्यक्ति के पास सुख-सुविधाएं हैं, साधन हैं, पर सच्चा संतोष नहीं है। वह भागता है, थकता है, फिर भी रुकता नहीं। उसके अंदर एक अजीब-सी अधूरी प्यास है, जिसे बुझाने के लिए वह दौड़ता जा रहा है।

यह दौड़ कभी धन की ओर होती है, कभी यश की ओर, कभी पद की ओर और कभी किसी सम्बन्ध की ओर। फिर वह सब कुछ पा भी लेता है, तो भी भीतर कोई रिक्तता बनी रहती है। यह रिक्तता ही उसकी बेचैनी की जड़ है। सबसे बड़ा धोखा यह है कि व्यक्ति को लगता है कि जो मुझे चाहिए, वह बाहरी दुनिया में है। अतः वह एक ऐसा आवरण ओढ़ लेता है, जिससे दूसरों को वह सफल दिखाई देता है, जबकि भीतर वह ख़ुद को अधूरा पाता है।

हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति जब बड़ी दौलत और शोहरत प्राप्त कर लेता है, तो उसके जीवन को हम सफल मान लेते हैं। उसके चारों ओर

चिंतन



रिज़वान अहमद

मीडिया, समाज और लोगों की प्रशंसा होती है। परंतु जब उस व्यक्ति के निकट जाकर उसकी आंखों में झांकते हैं तो वहां भी वही बेचैनी, वही असंतोष और वही गहरी उदासी होती है। बाह्य उपलब्धियों की अधिकता भी उसे आत्मिक संतोष नहीं दे पाती।

ऐसे में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि यह दौड़ कब थमेगी? क्या यह दौड़ कभी ख़त्म होगी? यह प्रश्न जितना गहरा है, इसका उत्तर भी उतना ही सूक्ष्म है। यह दौड़ दरअस्ल उस क्षण तक नहीं रुकती जब तक मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान लेता।

मनुष्य जब तक अपने को केवल शरीर मानता है, तब तक उसकी सारी ज़रूरतें भी भौतिक होती हैं, खाना, पीना, नौकरी, पद, मकान, गाड़ी, परिवार। परंतु इन सबके बीच भी कुछ ऐसा है जो उसके हृदय को शांति नहीं देता। क्यों? क्योंकि वह स्वयं शरीर से परे आत्मा है, एक चेतना, एक रूह, जो परम सत्य की ओर लौटना चाहती है।

मनुष्य के पास जो सबसे बड़ी क्षमता है वह सोचने, समझने और आत्म-मूल्यांकन करने की शक्ति। यह शक्ति उसे अन्य जीवों से अलग बनाती है। वह केवल अपने पेट की भूख नहीं पहचानता, वह आत्मा की भूख भी

महसूस करता है, लेकिन अक्सर उसे पहचान नहीं पाता।

जब तक यह पहचान नहीं होती, तब तक वह अपने दुखों का इलाज बाह्य उपायों से करता है, और वे उपाय केवल अस्थायी राहत देते हैं, समाधान नहीं। आत्मा की तृष्णा को भौतिक चीज़ों से नहीं बुझाया जा सकता।

इसका समाधान तब तक नहीं मिलेगा जब तक वह अपनी आत्मा की पुकार को न सुने। वह शांति केवल तब संभव है जब मनुष्य यह माने कि- "मैं इस संसार में अस्थायी रूप से भेजा गया हूं, मेरा अंतिम ठिकाना कोई और है, और मेरा उद्देश्य केवल धन संचय नहीं, बल्कि अपने सृष्टिकर्ता को पहचानना है।"

इस्लाम इस गहन प्रश्न का बड़ा ही संतुलित और गूढ़ उत्तर देता है। क़ुरआन में अल्लाह तआला फ़रमाता है–

"जान लो, केवल अल्लाह के ज़िक्र से ही दिलों को सुकून मिलता है।" (क़ुरआन, 13:28)

यानी जो दिल बेचैन है, उसे चैन केवल उस स्मृति (ज़िक्र) से मिलता है जो उसे उसकी अस्ली पहचान से जोड़ता है। रब की पहचान, रब की याद और रब की राह।

इस्लाम यह नहीं कहता कि धन, संपत्ति या पद प्राप्त करना बुरा है। बल्कि वह यह कहता है कि यह सब साधन हैं, उद्देश्य नहीं। अल्लाह तआला क़ुरआन में फ़रमाता है–

"जो कुछ अल्लाह ने तुम्हें दिया है, उससे आख़िरत (परलोक) का घर बनाओ, और दुनिया में अपने हिस्से को मत भूलो।" (क़ुरआन, 28:77)

यानी यह जीवन भी महत्वपूर्ण है, लेकिन इसका केंद्र बिंदु केवल यह नहीं होना चाहिए। अगर यह जीवन केवल भोग के लिए बना होता, तो मृत्यु क्यों होती? अगर केवल सुख ही अंतिम होता, तो दुख का अस्तित्व क्यों होता?

जब मनुष्य यह समझ लेता है कि उसका वास्तविक मूल्य उसकी आत्मा

हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति जब बड़ी दौलत और शोहरत प्राप्त कर लेता है, तो उसके जीवन को हम सफल मान लेते हैं। उसके चारों ओर मीडिया, समाज और लोगों की प्रशंसा होती है। परंतु जब उस व्यक्ति के निकट जाकर उसकी आंखों में झांकते हैं तो वहां भी वही बेचैनी, वही असंतोष और वही गहरी उदासी होती है। बाह्य उपलब्धियों की अधिकता भी उसे आत्मिक संतोष नहीं दे पाती।

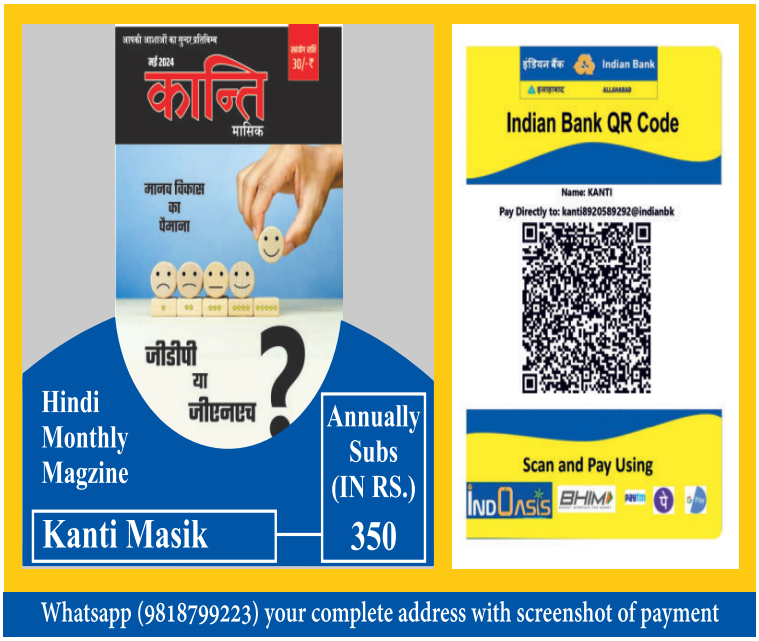

Whatsapp (9818799223) your complete address with screenshot of payment

में है, तब वह एक नई दुनिया में प्रवेश करता है। उस दुनिया में वह दूसरों को अपना शत्रु नहीं, सहयोगी समझता है। वहां ईर्ष्या की जगह सद्भाव होता है, वहां लोभ की जगह कृतज्ञता होती है।

इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार, हर मनुष्य के अंदर एक फ़ितरत (स्वाभाविक प्रकृति) होती है, जो उसे अच्छाई, न्याय, करुणा और सच्चाई की ओर उन्मुख करती है, लेकिन जब वह केवल भौतिकवाद की चकाचौंध में उलझ जाता है, तो उसका यह स्वभाव दब जाता है और वह भ्रम में जीने लगता है।

जब व्यक्ति स्वयं को शरीर समझ बैठता है। जब उसे लगता है कि सब कुछ धन, पद, सुविधा में ही निहित है। जब वह केवल अपने परिवार, जाति, धर्म या राष्ट्र को ही "अपना" मानने लगता है और अन्य को "ग़ैर"। जब हर व्यक्ति दूसरे को देखकर स्वयं को कमतर महसूस करता है। तब उसका जीवन अशांतियों से भरने लगता है।

इन सबका इलाज एक ही है, दृष्टिकोण का विस्तार और आत्मा की पहचान। जब तक हम हर मनुष्य को सम्मान नहीं देंगे, तब तक हमारे अंदर शांति नहीं आएगी। दूसरों को अपना प्रतिद्वंद्वी या "ग़ैर" मानने की भावना हिंसा का पहला बीज है।

और यह भावना तब तक नहीं मिटती जब तक मनुष्य यह नहीं समझता कि सभी इंसान मूलतः एक ही स्रोत से आए हैं। जब तक वह यह नहीं मानता कि हर आत्मा, चाहे वह किसी जाति, मज़हब या भूगोल से संबंधित हो, उसी रब की बनाई हुई है जिसने उसे ख़ुद बनाया है। यही वह चेतना है

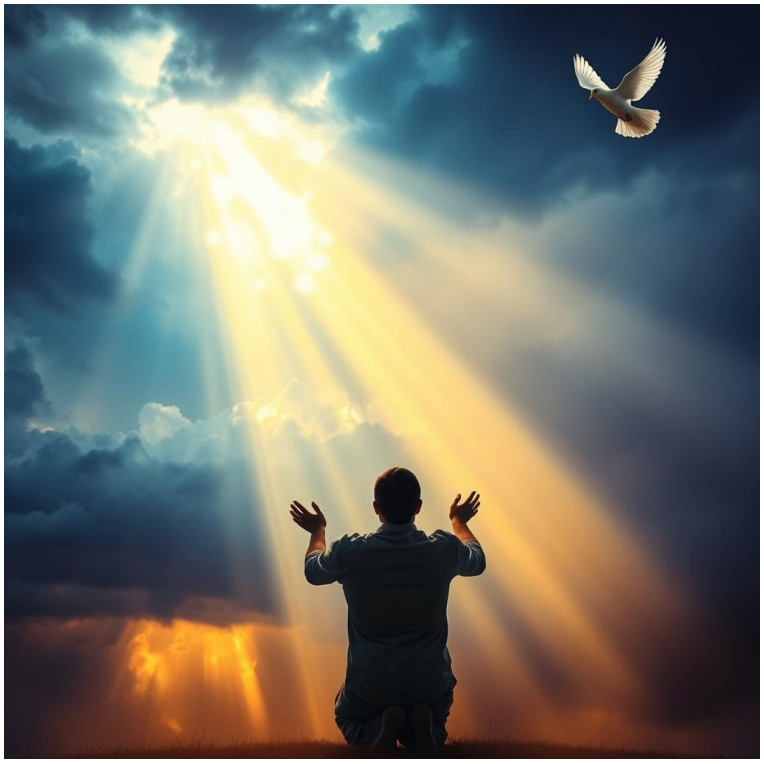

जो इंसान को छोटा सोचने से रोकती है, और उसके भीतर व्यापकता, सहअस्तित्व और करुणा के बीज बोती है।

यही वह क्षण होता है जब भीतर से एक पुकार उठती है—कि अब लौट चलो। अब उस ओर दौड़ो जहां से तुम्हारी आत्मा आई थी। क़ुरआन यही पुकार बनकर कहता है : "तो दौड़ो अल्लाह की ओर! निस्संदेह मैं तुम्हारे लिए उसकी ओर से स्पष्ट चेतावनी देने वाला हूं।" (क़ुरआन, 51:50)

यह दृष्टिकोण हमारे दिल को बड़ा बनाता है, और हमारे जीवन को एक नई दिशा देता है। जब मनुष्य अपने आपको पहचान लेता है, जब वह अपनी आत्मा को जान लेता है और अपने रब की ओर लौटता है, तब वह समझता है कि उसे और कुछ पाने की आवश्यकता नहीं है। धन, पद, प्रसिद्धि, सब आते हैं, जाते हैं। पर जो रब के साथ संबंध जोड़ लेता है, वह कभी अकेला नहीं रहता। वही उसकी शांति है, वही उसकी सफलता।

"वह सफल हुआ जिसने अपनी आत्मा को विकसित किया और वह असफल रहा जिसने उसे दबा दिया।"

(क़ुरआन, 91: 9-10)

इसलिए इस युग की बेचैनी का इलाज केवल ध्यान, मनन या मनोविज्ञान में नहीं, बल्कि उस पूर्ण सत्य की ओर लौटने में है, जिसने हमें पैदा किया, और जो हमारी हर ज़रूरत को जानने वाला है।

जहां दौड़ ख़त्म होती है, वहीं से सच्चा जीवन शुरू होता है। वह जीवन जिसमें शांति है, कृतज्ञता है, और सबसे बढ़कर, एक ऐसी संतुष्टि जो हमें इस दुनिया से नहीं, बल्कि अपने रब से मिलने से प्राप्त होती है। ■■

क़ौम के अहल सर्वत और अह्ले-ख़ैर हज़रात से ख़ुसूसी अपील

यतीमख़ाना इस्लामिया, गया

107 साल की ख़िदमात

आपके माली तआवुन का मुंतज़िर है



तआरुफ़ : इदारा की बुनियाद अक्तूबर 1917 में एक उस्ताद और दो यतीम बच्चों से आठ आने (50 पैसे) माहवार किराया की कोठरी में Rs. 30 रुपये की छोटी-सी रक़म से पड़ी थी। **तालीमी साल :** अप्रैल ता मार्च **तालीमी मराहिल :** इब्तिदाई, • सानवी, • आला, • शोबा-ए-हिफ़्ज़, • इनायत (I.T.I) • फ़ासलाती तालीम : I.A., B.A, M.A और लाइब्रेरी साइंस (BLIS) • तादाद ज़ेरे-तालीम तलबा व तालिबात : तक़रीबन 450 • **तादाद कुल यतीम तलबा** 60 • बैरूनी तलबा, जो अपना ख़र्च देकर हॉस्टल में रहते हैं, उसके अलावा हैं। • तादाद तदरीसी व ग़ैर-तदरीसी स्टाफ़ : 20 **सालाना ख़र्च :** पैंतीस लाख (RS. 35,00,000) रुपये से ज़्यादा। **ज़रिया आमदनी :** मुस्लिम अवाम के चंदे। **ख़र्चे :** यतीम तलबा का सारा ख़र्च (तआम, क़ियाम, रिहाइश वग़ैरा बिल्कुल मुफ़्त) ये सारा ख़र्चे इदारा पूरा करता है। किसी तरह का कोई ख़र्च नहीं लिया जाता है। **याद रखें :** (1) यहां का कोई भी मुहस्सिल कमीशन पर चंदा वसूल नहीं किया करता है। (2) पांच ज़बानों में क़ुरआन व इस्लामियात के साथ क्लास 1 से मैट्रिक तक जो बिहार बोर्ड से मंज़ूरशुदा है मेयारी तालीम है। • हिफ़्ज़ के साथ-साथ मैट्रिक का नज़्म (3) 107 साल से यतीम और ग़ैर-यतीम तलबा की इस्लामी माहौल में दीनी व असरी तालीम के साथ तालीमी व तरबियती ख़िदमात अंजाम दे रहा है। (4) इदारा ही के Campus में दो हरे-भरे पार्क के साथ शानदार मस्जिद, तालीमगाह, इक़ामतगाह, मतबख़ और दूसरे शोबे वग़ैरा हैं • इसलिए तलबा को कहीं आना-जाना नहीं पड़ता है। **कफ़ाला स्कीम (Sponsorship)** के तहत एक यतीम तालिब-इल्म का सालाना ख़र्च RS. 25,000 है। आप भी इस कारे-सवाब में शरीक हों। • यहां के तलबा को मैट्रिक (Matric) पास करने के बाद कॉलेज के अलावा अरबी यूनिवर्सिटी में आलिमियत के पहले व दूसरे साल में आसानी से दाख़िला मिल जाता है। (5) यतीमख़ाना से मैट्रिक पास करने वाले यतीम तलबा का दाख़िला यतीमख़ाना के इनायत (I.T.I.) में बिल्कुल मुफ़्त है। उनसे किसी तरह का कोई ख़र्च नहीं लिया जाता है। पहले की तरह रहने-सहने और खाने-पीने की सारी सहूलियात दी जाती है। **अपील :** इस माद्दा परस्ताना और जदीद दौर में दीनी व असरी उलूम के रिहायशी (Residential) इदारों की पहले से कहीं ज़्यादा ज़रूरत है। • आसमान छूती महंगाई में इदारा की भरपूर माली मदद करें। तआवुन की मुख़्तलिफ़ शक्लें हैं जैसे • ज़कात, • अतियात, • सदक़ात, वग़ैरा और इदारा के बाक़ी तालीमी व तामीरी मन्सूबों के लिए भी रुपये की बहुत ज़रूरत है। इदारा आपसे नन्हे-मुन्ने मासूम यतीम बच्चों को तालीम के साथ-साथ बाहुनर बनाने के लिए और उन्हें ऊंचा उठाने के लिए फ़राख़दिलाना माली तआवुन की अपील करता है।

नोट : इदारा की मुख़्तसर तारीख़ दस्तावेज़ी (Documentary Film) फ़िल्म नज़रे-इनायत You Tube (Nazr-e-Enayeth) पर देखें।

चैक व ड्राफ़्ट और कोर बैंकिंग स्लिप पर सिर्फ यह लिखें : THE GAYA MUSLIM ORPHANAGAE

बराए राबिता चैक व ड्राफ़्ट और मनीआर्डर भेजने का पता

Hon. Secretary, THE GAYA MUSLIM ORPHANAGE •
Cherki-824237, Distt : Gaya (Bihar) India

Mobile : 9801213022, Whatsapp No. 7258063440

: Beneficiary Name
THE GAYA MUSLIM ORPHANAGE
(Bank A/C No.: 300402010010581 (ZAKATH
(Bank A/C No.: 300402010002982 (DONATIONS
Bank IFSC Code No: UBIN0530042
Bank: UNION BANK OF INDIA
(MAIN BRANCH GAYA)

Scan & Pay

याद रखें : बैंक में रक़म ट्रांसफ़र की तफ़्सील बराए मेहरबानी स्कैन ऐंड पे पर (Scan to Pay) या किसी ज़रिये से रक़म ट्रांसफ़र के बाद स्क्रीन शॉट (Screen Shot) और नाम व पता ऊपर के व्हाट्सऐप नंबर पर भेज दें ताकि रसीद भेजी जा सके।

इंजीनियर मुहम्मद हसनैन ख़ान
कारगुज़ार सदर : 9631867066

डॉक्टर जेड.ऐच. ख़ान
एजाज़ी सेक्रेट्री

E-mail : gmocde@yahoo.com.in
Website: www.gmogaya.in

पटना ब्रांच ऑफ़िस : पटना शहर के हमदर्द अपना चेक व ड्राफ़्ट और रक़म देने के लिए इनसे राबिता क़ायम करें। जनाब ग़ुलाम मुहम्मद ख़ां समनपुरा, पटना। 9934943229, जनाब इंजीनियर मुहम्मद हसनैन ख़ां समनपुरा, पटना। 9631867066

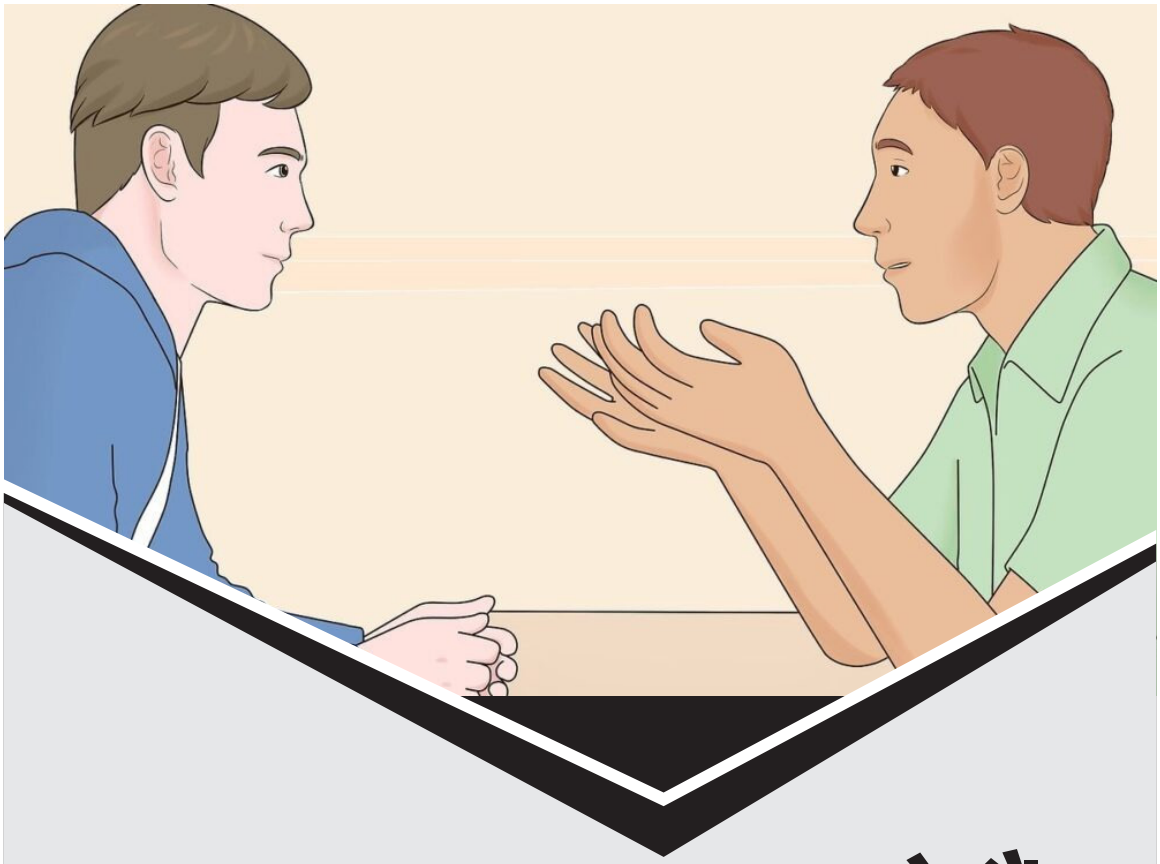

क्या हम 'सुनना' जानते हैं?

सौंदर्य बोध



तबाना नूरी

हमारी कार्य-संस्कृति में 'बोलना' अक्सर योग्यता का प्रमाण मान लिया जाता है, जबकि 'सुनना' एक गौण, कभी-कभी उपेक्षित क्षमता के रूप में रह जाता है। यह प्रवृत्ति विशेष रूप से संस्थागत संवाद—जैसे मीटिंग्स, नीति-निर्धारण बैठकों और टीम चर्चाओं—में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। जब संवाद का उद्देश्य 'समझना' नहीं बल्कि 'प्रभाव छोड़ना' बन जाए, तो मीटिंग्स विचार-विनिमय की जगह आत्म-प्रदर्शन का मंच बन जाती हैं।

ऐसे में यह सवाल ज़रूरी हो जाता है : क्या हम वाक़ई सुनना जानते हैं? और क्या हमने संवाद को केवल सूचना के आदान-प्रदान तक सीमित कर दिया है, या वह अब भी सहयोग, ईमानदारी और आत्म-जवाबदेही का माध्यम है? यही चिंतन "संवाद की संस्कृति और सुनने की कला" की चर्चा को अत्यंत प्रासंगिक बनाता है।

देश के कॉर्पोरेट सेक्टर से लेकर सामाजिक संगठनों और सरकारी दफ़्तरों तक, "मीटिंग कल्चर" अब कार्य-व्यवस्था का एक अपरिहार्य हिस्सा बन चुका है। रिपोर्टिंग, मूल्यांकन

और रणनीति, हर चीज़ इसी के ज़रिए तय होती है। मगर एक सवाल बार-बार उभरता है : क्या हमारी मीटिंग्स वाक़ई विचार-विनिमय का मंच बन रही हैं, या ये सिर्फ़ आत्म-प्रदर्शन का एक साधन मात्र बनकर रह गई हैं?

इस सवाल के जवाब में हमें शायद दो पहलुओं को देखना होगा—एक, हमारी संवाद-संस्कृति (Communication Culture) और दूसरा, मानसिक तैयारी (Mental Readiness) जिसे लेकर लोग इन बैठकों में जाते हैं।



एक असुविधाजनक सच

हाल की कई परियोजना समीक्षाओं और नीति-चर्चाओं में देखा गया है कि असहमति को अक्सर "अवज्ञा" या "नकारात्मकता" समझ लिया जाता है। इसके पीछे एक सांस्कृतिक भूल है। हम संवाद को बहस मानते हैं, और बहस को जीतने का मैदान। इस सोच में "सुनना" एक कमज़ोरी बन जाता है, और "कहना" श्रेष्ठता का प्रमाण, लेकिन संवाद तब ही सशक्त होता है, जब उसमें असहमति की जगह हो, बशर्ते कि वह सम्मानजनक हो।

मीटिंग्स में किस भावना के साथ जाते हैं लोग?

सामान्यतः देखने में आता है कि ज़्यादातर लोग मीटिंग के लिए तैयारी तो करते हैं, लेकिन विषय के लिए नहीं, बल्कि इस बात के लिए कि वे कैसे अच्छा दिखेंगे। यह 'छवि-सुधार अभियान' मीटिंग की आत्मा को नष्ट कर देता है।

यह स्थिति किसी एक संस्थान की नहीं, बल्कि व्यापक प्रवृत्ति है। कई बार लोग किसी भी समीक्षा में केवल इस मंशा से जाते हैं कि अपनी राय थोप सकें, विरोध दर्ज कर सकें या फिर निष्क्रिय मौन में बैठकर समय काट सकें। परिणामस्वरूप, पूरी प्रक्रिया एक रचनात्मक संवाद नहीं, बल्कि औपचारिक रिपोर्टिंग बनकर रह जाती है। हर मीटिंग से पहले यदि यह प्रश्न पूछा जाए—"क्या मैं सही नीयत से इस बातचीत का हिस्सा बनने जा रहा हूं? तो शायद बातचीत का मिज़ाज ही बदल जाए।

सहयोग या प्रतियोगिता?

कॉर्पोरेट जगत में अक्सर मीटिंग्स "आईडिया शेयरिंग" की बजाय "आईडिया मार्केटिंग" का ज़रिया बन जाती हैं। समाजसेवी संगठनों में भी यह प्रवृत्ति देखी गई है कि वरिष्ठ लोगों की बात को बिना आलोचना के स्वीकार कर लिया जाता है, जबकि जूनियर की राय में ख़ामी खोज ली जाती है—even before it is fully heard.

ये सभी घटनाएं एक ही बात की ओर इशारा करती हैं कि हमारे संवाद का उद्देश्य 'सत्य तक पहुंचना' नहीं, बल्कि 'अपने पक्ष को साबित करना' बन गया है।

यहां इस्लामी परंपरा में 'मश्वरा' (परामर्श) की अवधारणा प्रासंगिक है। क़ुरआन में एक निर्देश है–

"और उनसे कामों में मशविरा

लो।" (क़ुरआन, 42:38)

यह केवल एक धार्मिक आदेश नहीं, बल्कि एक प्रशासनिक सूत्र है, किसी भी निर्णय से पहले बहस नहीं, सलाह होनी चाहिए—वो भी ईमानदारी से और बराबरी के आधार पर।

सुनने की कला और विनम्रता

इस संबंध में जानकारों का कहना है कि हमारी संस्कृति में विनम्रता को अभी भी कमज़ोरी समझा जाता है। जबकि ग़ौर से सुनना एक मानसिक और बौद्धिक शक्ति है। इस्लामी दर्शन में यह एक आध्यात्मिक अभ्यास है, जहां आप अपने 'अहं' को पीछे रखते हैं ताकि आप दूसरों को जगह दे सकें।

जर्नलिज़्म में इसे active listening कहा जाता है, लेकिन अधिकांश मीटिंग्स में यह अनुपस्थित है। लोग बात काटते हैं, फॉर्मूलों में सोचते हैं, और अक्सर असहमति को अपमान समझ लेते हैं।

जब कोई सहकर्मी मीटिंग में कहे, "मुझे लगता है मेरी बात नहीं सुनी गई", और आप जवाब दें, "मैं समझता हूं कि आप अपनी राय व्यक्त करना चाहते थे, लेकिन समय कम था। आइए अब सुनते हैं।" — यह active listening की मिसाल है।

यह पूरा संवाद इस बात की मिसाल है कि active listening एक मानसिक स्थिति है, जिसमें आप केवल "सुनते नहीं", बल्कि सुनने के बाद सोचते हैं, और सोचकर उत्तर देते हैं, वह भी इस नीयत से कि सामने वाला व्यक्ति सुनने लायक़ है और उसकी बात का अर्थ है । इसलिए, यह प्रतिक्रिया केवल एक वाक्य नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक नैतिकता है, जो संवाद को विवाद बनने से बचा लेती है।

संवाद की संस्कृति में सुधार केवल तकनीकी ट्रेनिंग से नहीं आएगा।

सुनना एक नेतृत्व गुण है और जो व्यक्ति सुनना सीख जाता है, वही सहयोग का माहौल बना सकता है। संवाद की संस्कृति बनती है, सुनने, स्वीकारने और साझा सोचने की प्रवृत्ति से। और यह तभी संभव है जब लोग मानसिक तैयारी के साथ, ईमानदार इरादों के साथ, और दूसरों की बात समझने की जिज्ञासा के साथ संवाद में भाग लें।

इसके लिए ज़रूरी है, दूसरे की बात को उतना ही महत्त्व देना, जितना हम अपनी बात को देते हैं। यही वह बुनियादी सिद्धांत है जो इंसानी रिश्तों को भी, और संस्थागत निर्णयों को भी टिकाऊ बनाता है।

मीटिंग का वास्तविक मूल्य : आंकड़ों से अधिक इरादों में

अक्सर देखा जाता है कि कार्य-स्थल पर मीटिंग्स में बहुत-सा समय ऐसे बिंदुओं पर व्यतीत होता है जिन पर कोई ठोस निर्णय नहीं होता। इसका एक कारण यह है कि हम मीटिंग्स को 'तकनीकी प्रक्रिया' मानते हैं—जबकि संवाद एक गहराई वाली मानवीय प्रक्रिया है। मीटिंग सिर्फ़ मसौदा बनाने या रिपोर्ट दर्ज करने का ज़रिया नहीं है, बल्कि यह ईमानदारी, विनम्रता, और साझा ज़िम्मेदारी के मूल्यों की अभिव्यक्ति है।

संवाद की संस्कृति : क्या बदलाव संभव है?

हाल के वर्षों में कई भारतीय टेक कंपनियों ने मीटिंग फॉर्मेट में बदलाव करना शुरू किया है। कई जगहों पर अब मीटिंग की शुरुआत से पहले 5–10 मिनट का एक intent round रखा जाता है, जिसमें प्रतिभागी यह स्पष्ट करते हैं कि वे इस बैठक में क्या समझना या स्पष्ट करना चाहते हैं। इस छोटे से अभ्यास का उद्देश्य संवाद की स्पष्टता और सहभागिता, दोनों में सुधार लाना है। इससे मीटिंग केवल सूचना साझा करने का माध्यम न रहकर, एक सशक्त संवाद प्रक्रिया बनती है।

यह प्रयोग दर्शाता है कि जब व्यक्ति "मैं सब नहीं जानता" की सोच के साथ आता है, तो वह केवल पेशेवर नहीं, एक इंसानी संवादकर्ता बन जाता है। और शायद यही संवाद की संस्कृति और आत्मिक चेतना एक-दूसरे से



मिलते हैं।

आत्म-परीक्षण (मोहासबा-ए-नफ़्स) का अभ्यास

इस शीर्षक को यदि हम पेशेवर मीटिंग्स और संस्थागत संवाद के संदर्भ में देखें, तो इसकी प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। अक्सर देखा गया है कि मीटिंग्स में लोग केवल औपचारिकता निभाने आते हैं, बिना तैयारी, बिना स्पष्ट सोच और बिना आत्मिक जुड़ाव के। वे अपने हिस्से की ज़िम्मेदारी को टालकर दोष दूसरों पर डालने में संकोच नहीं करते। ऐसे माहौल में "आत्म-जवाबदेही" की धारणा एक आंतरिक अनुशासन की मांग करती है।

"मोहासबा-ए-नफ़्स" यानी आत्म-परीक्षण केवल धार्मिक या नैतिक अभ्यास नहीं, बल्कि यह पेशेवर नैतिकता का मूल है। जब कोई अधिकारी, टीम सदस्य या नेता हर मीटिंग से पहले यह सोचकर बैठे कि "क्या मैंने अपना काम ईमानदारी से किया है? क्या मैंने टीम के हित में सोचा है या केवल अपनी छवि बचाने में लगा रहा?", तभी संवाद प्रभावी, ईमानदार और परिवर्तनशील हो सकता है।

इस प्रक्रिया से न केवल निर्णयों की गुणवत्ता सुधरती है, बल्कि संस्थान के भीतर विश्वास का माहौल बनता है। क्योंकि जब हर व्यक्ति ख़ुद से सवाल करने लगे, बिना किसी बाहरी दबाव के तो मीटिंग्स औपचारिकता नहीं, एक रचनात्मक और नैतिक मंच बन जाती हैं।

मोहासबा-ए-नफ़्स वह आत्मिक अनुशासन है, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने अंतःकरण के आईने में स्वयं को टटोलता है, अपने कार्य-व्यवहार का निष्पक्ष लेखा-जोखा करता है, और आत्मा की शुद्धि की ओर अग्रसर होता है। इस दृष्टिकोण से देखें तो "मोहासबा-ए-नफ़्स" सिर्फ़ आत्मा का लेखा-जोखा नहीं, बल्कि मीटिंग्स की आत्मा भी बन सकता है।

क्या हम सुनना सीख सकते हैं?

सुनना एक नेतृत्व गुण है और जो व्यक्ति सुनना सीख जाता है, वही सहयोग का माहौल बना सकता है। संवाद की संस्कृति बनती है, सुनने, स्वीकारने और साझा सोचने की प्रवृत्ति से। और यह तभी संभव है जब लोग मानसिक तैयारी के साथ, ईमानदार इरादों के साथ और दूसरों की बात समझने की जिज्ञासा के साथ संवाद में भाग लें।

इस संदर्भ में क़ुरआन की यह आयत फिर याद आती है–

"तो अल्लाह से डरते रहो और ठीक-ठीक और सधी हुई बातें कहा करो।" (क़ुरआन, 33:70)

यह वाक्य एक व्यक्तिगत मूल्य ही नहीं, बल्कि संस्थागत आचारसंहिता का हिस्सा बन सकता है। ■■



नव-निरक्षरता : डिजिटल युग में साक्षरता की नई चुनौती

कल्पना कीजिए, यदि कोई व्यक्ति पढ़ने-लिखने से वंचित हो, तो उसकी दुनिया कितनी अंधेरी और संकुचित होगी। आधुनिक युग में इस बुनियादी क्षमता के बिना जीवन, मानो आंखों पर पट्टी बांधकर भीड़ में भटकने जैसा है।

जब हम सड़क पर लगे संकेत, दवाई की पर्ची, बैंक का फॉर्म या किसी ऐप का नोटिफ़िकेशन पढ़ते हैं, तो हम उस शक्ति का उपयोग कर रहे होते हैं, जिसे हम "साक्षरता" या अक्षर-ज्ञान कहते हैं। यह अक्षर-ज्ञान व्यक्ति के आत्म-सम्मान, अधिकारों और बेहतर जीवन का रास्ता है।

हर वर्ष 8 सितम्बर को अंतर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस मनाया जाता है, जो 1966 में यूनेस्को (UNESCO) द्वारा स्थापित किया गया था, और 1967 में पहली बार आयोजित हुआ।

मुख्य स्तंभ



सुफ़ियान अहमद

साक्षरता : केवल कौशल नहीं, दृष्टि का विस्तार

मनुष्य का मस्तिष्क स्वाभाविक रूप से प्रश्न पूछता है—यह क्यों है? यह कैसे हुआ? इसके पीछे कारण क्या है? साक्षरता इन प्रश्नों को संरचना देती है और उनके उत्तर खोजने का मार्ग खोलती है। पढ़ने की आदत मनुष्य को अपने समय और स्थान से परे ले जाती है, जहां वह अपने से भिन्न संस्कृतियों, विचारों और अनुभवों को जान सकता है।

साक्षरता के बिना व्यक्ति का ज्ञान केवल मौखिक और प्रत्यक्ष अनुभवों तक सीमित रहता है, जो अक्सर संकीर्ण और स्थानीय होता है। यह सीमित दृष्टिकोण समाज में असमानताओं, पूर्वाग्रहों और डर को बढ़ावा देता है। साक्षरता केवल काग़ज़ पर लिखे शब्दों को पहचानना नहीं, बल्कि अपने जीवन और समाज को समझने की क्षमता विकसित करना है। यह मानवाधिकार और गरिमा की पहचान है।



डिजिटल युग में साक्षरता का अर्थ

इस वर्ष (2025) अंतर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस की थीम है—"डिजिटल युग में साक्षरता को बढ़ावा देना" ("Promoting literacy in the digital era")। यह विषय अत्यंत प्रासंगिक है, क्योंकि डिजिटल माध्यमों ने सीखने और संवाद करने के तरीक़ों को नया रूप दिया है। यह थीम इस तथ्य को उजागर करती है कि आज अक्षर-ज्ञान के साथ-साथ डिजिटल दक्षता भी अपरिहार्य है। आज पढ़ना-लिखना जानने वाला व्यक्ति भी डिजिटल उपकरणों से अनभिज्ञ होने पर सूचना और अवसर से वंचित रह सकता है।

वैश्विक परिदृश्य : चुनौती और संकल्प

यूनेस्को के आंकड़ों के अनुसार, आज भी लगभग 760 मिलियन वयस्क (15 वर्ष और उससे अधिक आयु) न्यूनतम पठन-लेखन क्षमता से वंचित हैं। इनमें लगभग दो-तिहाई महिलाएं हैं। 250 मिलियन बच्चे 6–18 वर्ष की आयु में या तो स्कूल से बाहर हैं, या मूल पठन-लेखन में असमर्थ हैं।

यह समस्या केवल विकासशील देशों तक सीमित नहीं है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में भी लाखों वयस्क ऐसे हैं जो बुनियादी पढ़ने-लिखने में सक्षम नहीं हैं। इससे स्पष्ट है कि साक्षरता को केवल 'ग़रीब देशों' की समस्या मान लेना एक भ्रम है;

आज के डिजिटल युग में एक नई समस्या उभर रही है—नव-निरक्षरता। यह वह स्थिति है, जब व्यक्ति भाषा तो जानता है, पर डिजिटल उपकरणों के माध्यम से सीखने, संवाद करने और निर्णय लेने में असमर्थ है।

यह एक वैश्विक चुनौती है, जिसके समाधान के लिए सभी समाजों को अपनी प्राथमिकताओं पर पुनर्विचार करना होगा।

भारत की स्थिति

भारत ने स्वतंत्रता के बाद साक्षरता के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। 1951 में जहां साक्षरता दर मात्र 18% थी, वहीं 2022 तक यह लगभग 77% तक पहुंच गई। परंतु आंकड़े बताते हैं कि अभी भी 20 करोड़ से अधिक लोग निरक्षर हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में, विशेषकर महिलाओं और वंचित वर्गों में यह दर और भी कम है।

भारत सरकार ने राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान (PMGDISHA) जैसे अभियानों के ज़रिए अक्षर-ज्ञान और डिजिटल प्रशिक्षण दोनों पर बल दिया। इन योजनाओं का उद्देश्य केवल पढ़ना-लिखना सिखाना नहीं, बल्कि लोगों को आधुनिक आर्थिक और सामाजिक अवसरों से जोड़ना है, लेकिन ये अभियान अभी भी अपने अपेक्षित लक्ष्य से कोसों दूर हैं। इस संबंध में अभी भी क्षेत्रीय और सामाजिक असमानता साफ़ दिखाई देती है।

नव-निरक्षरता (Neo-illiteracy): एक अदृश्य चुनौती

आज के डिजिटल युग में एक नई समस्या उभर रही है—नव-निरक्षरता। यह वह स्थिति है, जब व्यक्ति भाषा तो जानता है, पर डिजिटल उपकरणों के माध्यम से सीखने, संवाद करने और निर्णय लेने में असमर्थ है।

नौकरी के आवेदन से लेकर बैंकिंग, स्वास्थ्य बीमा, सरकारी सब्सिडी और यहां तक कि बच्चों की ऑनलाइन पढ़ाई, सब डिजिटल माध्यमों पर आधारित हैं। जो लोग डिजिटल माध्यम से वंचित हैं, वे सूचना, अवसर और सामाजिक भागीदारी तीनों से वंचित रह जाते हैं।

डिजिटल युग में साक्षरता की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि ज्ञान का स्वरूप लगातार बदल रहा है, और इसके साथ तालमेल न बिठा पाने वाला व्यक्ति हाशिये पर पहुंच जाता

है। तकनीक इतनी तेज़ी से विकसित हो रही है कि आज का कौशल कल अप्रासंगिक हो सकता है। यह परिवर्तन सिर्फ़ उपकरणों का नहीं, बल्कि सोचने, समझने और संवाद करने के तरीक़ों का भी है।

बच्चों के लिए साक्षरता : जिज्ञासा से कल्पना तक

बच्चे स्वाभाविक रूप से जिज्ञासु होते हैं; पढ़ना उनकी जिज्ञासा और कल्पनाशीलता को जगाता है। धीरे-धीरे डिजिटल वीडियो, इंटरैक्टिव ऐप, ऑडियो–विज़ुअल सामग्री उनके सीखने में अहम भूमिका निभाने लगी है।

लेकिन इन माध्यमों का लाभ तभी होता है, जब बच्चों को बुनियादी साक्षरता और डिजिटल समझ, दोनों हो। स्कूलों को न केवल अक्षर-ज्ञान पढ़ाना चाहिए, बल्कि डिजिटल साधनों का सुरक्षित और ज़िम्मेदार उपयोग भी सिखाना चाहिए। यह दृष्टिकोण उन्हें भविष्य के बदलते समाज में सक्रिय, आत्म-निर्भर और जागरूक नागरिक बनाने में सहायक होगा।

एक पवित्र और अनिवार्य कर्म

जब कोई समाज साक्षर होता है, तो वह केवल अक्षरों का ज्ञान ही नहीं पाता, बल्कि अपने अतीत को समझने, वर्तमान को परखने और भविष्य को गढ़ने की क्षमता भी अर्जित करता है। साक्षरता मनुष्य को अपनी सीमाओं से बाहर निकलने और संसार की जटिलताओं को पहचानने का सामर्थ्य देती है। यही कारण है कि ज्ञान की खोज को हमेशा एक पवित्र और अनिवार्य कर्म माना गया है।

इस कर्म को क़ुरआन का एक महान संदेश हमें बड़े ही सशक्त ढंग से याद दिलाता है–"पढ़ो, अपने उस पालनहार के नाम से जिसने तुम्हें पैदा किया।" (क़ुरआन, 96:1)

यह आयत ज्ञान की महत्ता और सीखने के आदेश को प्रकट करती है। यह केवल पढ़ने का आह्वान नहीं, बल्कि एक चेतावनी भी है कि सच्चा ज्ञान वही है जो हमें सृष्टि, समाज और स्वयं को समझने के लिए प्रेरित करे। डिजिटल युग में अक्षरों और तकनीकी साक्षरता की यह दोहरी रोशनी तभी सार्थक होगी जब वह हमें अज्ञानता से निकालकर विवेक के मार्ग पर ले जाए।

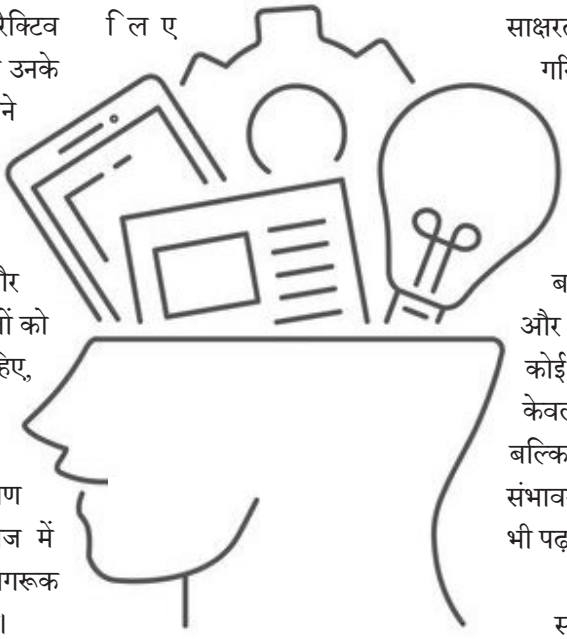

निरक्षरता पर नियन्त्रण संभव है

निरक्षरता चाहे पारंपरिक हो या डिजिटल, दोनों पर क़ाबू पाया जा सकता है। इसके लिए बहु-स्तरीय प्रयास आवश्यक हैं–

1. समुदाय-आधारित शिक्षा केंद्र—जहां लोग समय और आयु की बाधा के बिना सीख सकें।

2. डिजिटल प्रशिक्षण शिविर—जो ग्रामीण और हाशिये के इलाक़ों में विशेष रूप से केंद्रित हों।

3. शिक्षक प्रशिक्षण—ताकि वे डिजिटल टूल और स्थानीय भाषाओं दोनों में दक्ष हों।

4. सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP)—के तहत तकनीकी कंपनियों, NGOs और सरकार का सहयोग।

5. मीडिया अभियान—जो साक्षरता को सामाजिक प्रतिष्ठा और गरिमा के साथ जोड़ें।

इन प्रयासों को स्थानीय समुदाय, शिक्षक, सिविल समाज और सरकार के सहयोग से जनांदोलन में बदलना होगा, तभी यह सतत और व्यापक प्रभाव दे सकते हैं। जब कोई व्यक्ति पढ़ना सीखता है, तो वह केवल शब्दों को ही नहीं सीखता, बल्कि अपने अधिकार, स्वास्थ्य, संभावनाओं और आत्म-सम्मान को भी पढ़ना सीखता है।

आगे की राह

साक्षरता वह शक्ति है जो व्यक्ति को बदलाव की दिशा देती है, और एक मानवतावादी दृष्टि से समाज को आगे बढ़ाती है। यह केवल किताबों तक सीमित नहीं, यह जीवन जीने की बुनियादी समझ है। डिजिटल युग में, साक्षरता अब दोहरी है—अक्षरों की और तकनीक की। जब यह दोनों साथ मिलते हैं, तभी हम एक ऐसे समाज की कल्पना कर सकते हैं जहां कोई व्यक्ति सही अर्थों में साक्षरता की ज्योति से अपने जीवन के अंधकारों को दूर कर सकता है। ■■

एक अपील , एक ऐलान और तआरुफ़

आपकी ख़ुसूसी तवज्जह का सबसे ज़्यादा मुस्तहिक

मुस्लिम लड़कियों का यतीमख़ाना, गया

38 साल की ख़िदमात



कैफ़ीयते-क़ियाम : इदारा का तीन यतीम लड़कियों से 21 दिसम्बर 1986 को एक किराया के खपरैल मकान में क़ियाम अमल में आया था।

हिन्दुस्तान की रियासत बिहार, झारखंड, बंगाल, उड़ीसा में अपने तर्ज़ की पहली और वाहिद इक़ामती (Residential) तालीमगाह जो इस्लामी और असरी उलूम का संगम होने की वजह से मशहूर है। • इदारा बुनियाद के दिन से ही सही इस्लामी ख़ुतूत पर यतीम के साथ-साथ ग़रीब और ग़ैर-यतीम तालिबात की तालीमी व तर्बीयती ख़िदमात अंजाम दे रहा है। • यहां की तालिबात को मैट्रिक (Matric) पास करने के बाद कॉलेज के अलावा अरबी यूनिवर्सिटी में पहले और दूसरे साल में बाआसानी दाख़िला मिल जाता है। • शोबा-ए-हिफ़्ज़ की तालिबा को भी हिफ़्ज़ के साथ-साथ मैट्रिक तक पढ़ाया जाता है। • पांच ज़ुबानों में क़ुरआन और इस्लामियात और बिहार बोर्ड के निसाबे-तालीम के साथ मेयारी तालीम का नज़्म है। • **तालीमी साल** अप्रैल ता मार्च, • इदारा के अहाता (Campus) में ही पर्दे में रहकर नर्सरी से मैट्रिक तक की तालीम, होम साइंस, सिलाई-कटाई, मेहंदी व पेंटिंग और कम्प्यूटर की तालीम वग़ैरा दी जाती है। इसके लिए बच्चियों को कहीं आना-जाना नहीं पड़ता। **तालीमी मराहिल** • इब्तिदाई •सानवी • आला • फ़ासलाती तालीम • शोबा हिफ़्ज़ **यतीम तालिबात की तादाद** 75 **नोट** यतीम तालिबात का सारा ख़र्च, तआम व क़ियाम वग़ैरा बिल्कुल मुफ़्त है। **बैरूनी तालिबात की तादाद** अपने ख़र्च पर दारुल अक़ामा (Boarding) में रहकर तालीम हासिल करने वाली और दूसरे गांव से पढ़कर जाने वाली लगभग 100 हैं। **किफ़ाला स्कीम (Sponsorship)** के तहत एक यतीम बच्ची का सालाना ख़र्च पच्चीस हज़ार रुपये (Rs. 25,000) है। आप भी एक यतीम बच्ची की किफ़ालत की ज़िम्मेदारी लेकर सवाब में शरीक हों। **असातिज़ा, मुअल्लिमात और दीगर मुलाज़िमीन की तादाद** 33 तदरीसी और ग़ैर-तदरीसी स्टाफ़ की एक माह की तनख़्वाह एक लाख पच्चास हज़ार रुपये (Rs.1,50,000) से ज़्यादा है। **सालाना ख़र्च** तक़रीबन चालीस लाख रुपये (Rs. 40,00,000)। **ज़रिया आमदनी** मुस्लिम अवाम के चंदे **अपील** आज के माद्दापरस्ताना और जदीद दौर में लड़कियों के लिए जदीद और मुकम्मल इस्लामी तर्ज़े-तालीम के साथ रिहाइशी (Residential) इदारों की पहले से कहीं ज़्यादा बढ़कर ज़रूरत है। • आप इस महंगाई को देखते हुए और रमज़ान के मुबारक मौक़ा पर इदारे की नन्ही-मुन्नी मासूम यतीम बच्चियों को ऊंचा उठाने के लिए अपने • ज़कात • अतियात • सदक़ात से भरपूर माली मदद करें ताकि वे तालीम और हुनर के मैदान में आगे बढ़ सकें और किसी से पीछे न रहें। • बाक़ी तामीरी व तालीमी मन्सूबों को पूरा करने के लिए रक़म की फ़ौरी ज़रूरत है। • इदारा आपके फ़राख़दिलाना और मुख़लिसाना भरपूर माली तआवुन का मुंतज़िर है। **याद रखें** यह लड़कियों का इदारा है। यहां चंदा वसूल करने वालों की बहुत कमी है। यहां का कोई भी मुहस्सिल कमीशन पर चंदा वसूल नहीं किया करता है।

नोट : इदारा की मुख़्तसर तारीख़ दस्तावेज़ी फ़िल्म (Documentary Film) नज़रे-इनायत You Tube (Nazr-e-Enayeth) पर देखें।

चैक व ड्राफ़्ट और कोर बैंकिंग स्लिप पर सिर्फ यह लिखें : THE GAYA MUSLIM GIRLS' ORPHANAGAE

बराए राबिता चैक व ड्राफ़्ट और मनीआर्डर भेजने का पता

Founder & Hon. G. Secretary, THE GAYA MUSLIM GIRLS ORPHANAGE, At • : Kolowna, P.o : Cherki-824237, Distt : Gaya (Bihar) India

Email : thegayamuslimgirlsorphanage@gmail.Com, Mobile : 8969435151, Website : www.gmgo.in

: Beneficiary Name
THE GAYA MUSLIM GIRLS' ORPHANAGE
(Bank A/C No. : 300402010007752 (ज़कात
(Bank A/C No. : 300402010009846 (डोनेशन
Bank IFSC Code No : UBIN0530042
Bank : UNION BANK OF INDIA
(MAIN BRANCH GAYA)

Scan & Pay

याद रखें : बैंक में रक़म ट्रांसफ़र की तफ़्सील बराए मेहरबानी स्कैन एंड पै (Scan & Pay) या किसी ज़रिये से रक़म ट्रांसफ़र के बाद स्क्रीन शॉट (Screen Shot) नाम व पता सहित व्हाट्स एप कर दें ताकि रसीद भेजी जा सके।

व्हाट्स एप नम्बर 7367909126 बानी व इज़ाज़ी जनरल सेक्रेट्री इकबाल अहमद ख़ां 9934480190

पटना ब्रांच ऑफ़िस : पटना शहर के हमदर्द अपना चैक व ड्राफ़्ट और रक़म देने के लिए इनसे राबिता करें।

जनाब ग़ुलाम मुहम्मद ख़ां (सद्र) समनपूरा, पटना, मोबाइल : 9934943229

जनाब इंजीनियर मुहम्मद हसनैन ख़ां, समनपूरा, पटना, मोबाइल : 9631867066

ग्रामीण भारत में साक्षरता के बाद अगला पड़ाव डिजिटल साक्षरता



अभिमत



नेहा दंत्रे

आज, ग्रामीण भारत में मोबाइल की पहुंच 60% से ज़्यादा हो गई है, और डेटा की लागत दुनिया में सबसे कम हो गई है। इस बुनियादी ढांचे ने ऐसी संभावनाएं पैदा की हैं जो पांच साल पहले तक मौजूद भी नहीं थीं।

ग्रामीण भारत में डिजिटल साक्षरता का मतलब किसानों को कोडिंग सिखाना नहीं है। इसका मतलब है सदियों से अलग-थलग पड़े समुदायों को उन अवसरों, सेवाओं और सूचनाओं से जोड़ना जो रातोंरात उनके जीवन को बदल सकती हैं। ये आंकड़े चौंका देने वाले हैं कि 80 करोड़ से ज़्यादा भारतीय ग्रामीण इलाकों में रहते हैं, और हाल ही तक, उनमें से ज़्यादातर ने न तो कभी स्मार्टफोन इस्तेमाल किया था और न ही इंटरनेट का इस्तेमाल किया था। आज, ग्रामीण भारत में मोबाइल की पहुंच 60% से ज़्यादा हो गई है, और डेटा की लागत दुनिया में सबसे कम हो गई है। इस बुनियादी ढांचे ने ऐसी संभावनाएं पैदा की हैं जो पांच साल पहले तक मौजूद भी नहीं थीं।

डिजिटल समावेशन के माध्यम से कृषि-अवसरों को सक्षम बनाना

डिजिटल भुगतान प्रणालियों ने ग्रामीण परिवारों को बैंकों तक घंटों यात्रा करने या अत्यधिक ब्याज लेने वाले साहूकारों पर निर्भर रहने की आवश्यकता को समाप्त कर दिया है। ग्रामीण क्षेत्रों में UPI लेनदेन अब हर महीने अरबों में होते हैं, जिससे लेनदेन लागत कम होती है और वित्तीय समावेशन में सुधार होता है।

ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा तक पहुंच में डिजिटल साक्षरता का महत्व

टेलीमेडिसिन ने विशेषज्ञ डॉक्टरों को उन गांवों तक पहुंचाया है जहां कभी बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाएं नहीं

थीं। मरीज़ वीडियो कॉल के ज़रिए हृदय रोग विशेषज्ञों और त्वचा विशेषज्ञों से परामर्श लेते हैं, डिजिटल रूप से दवाइयां प्राप्त करते हैं, और ऑनलाइन वितरण प्रणालियों के माध्यम से दवाएं प्राप्त करते हैं। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच स्वास्थ्य सेवा का अंतर किसी की भी अपेक्षा से कहीं अधिक तेज़ी से कम हो रहा है।

भारत में डिजिटल साक्षरता के माध्यम से शिक्षा में परिवर्तन

डिजिटल प्लेटफॉर्म के ज़रिए शिक्षा के अवसरों में भारी वृद्धि हुई है। शिक्षा से जुड़े गैर-सरकारी संगठनों के प्रयासों से, दूर-दराज के गांवों के बच्चे भी महानगरों के छात्रों की तरह ही ऑनलाइन पाठ्यक्रमों का लाभ उठा पा रहे हैं। क्षेत्रीय भाषाओं में सामग्री उपलब्ध होने से भाषा संबंधी बाधाएं दूर हो रही हैं, भारत में एक बाल गैर-सरकारी संगठन के मार्गदर्शन में, अनुकूली शिक्षण तकनीकें छात्रों को उनकी शुरुआती स्थिति की परवाह किए बिना, अपनी गति से आगे बढ़ने में मदद कर रही हैं।



कौशल विकास कार्यक्रम अब डिजिटल माध्यम से गांवों तक पहुंच रहे हैं। सिलाई, इलेक्ट्रॉनिक्स मरम्मत और कंप्यूटर कौशल प्रशिक्षण टैबलेट और इंटरनेट कनेक्शन से सुसज्जित सामुदायिक केंद्रों में उपलब्ध हैं। ग्रामीण युवा, शिक्षा और गैर-सरकारी संगठनों के साथ जुड़कर , शहरों की ओर पलायन किए बिना ही, बाज़ार में उपलब्ध कौशल प्राप्त कर सकते हैं, जिससे स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर पैदा हो रहे हैं। ई-कॉमर्स ने ग्रामीण कारीगरों और उत्पादकों के लिए वैश्विक बाजार खोल दिए हैं। दूर-दराज के गांवों में बने हस्तशिल्प अब ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बिकते हैं। जैविक किसान सीधे शहरी उपभोक्ताओं तक पहुंचते हैं, जिससे कई बिचौलियों का अंत होता है और उनका लाभ मार्जिन उल्लेखनीय रूप से बढ़ता है।

ग्रामीण भारत में महिलाएं और डिजिटल क्रांति

डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों में महिलाओं की भागीदारी विशेष रूप से परिवर्तनकारी रही है। स्वयं सहायता समूह गतिविधियों के समन्वय, वित्तीय मामलों पर नज़र रखने और सूक्ष्म वित्त तक पहुंचने के लिए डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म का उपयोग करते हैं। महिला उद्यमी सोशल मीडिया मार्केटिंग और ऑनलाइन भुगतान प्रणालियों का उपयोग करके सफल व्यवसाय चलाती हैं। स्थानीय भाषा की सामग्री अपनाने में महत्वपूर्ण रही है।

गांवों में एक डिजिटल साक्षर व्यक्ति अक्सर दर्जनों अन्य लोगों के लिए एक संसाधन बन जाता है, जिससे अनौपचारिक नेटवर्क बनते हैं जो डिजिटल कौशल का स्वाभाविक रूप से प्रसार करते हैं। कई मामलों में समुदाय-आधारित शिक्षा औपचारिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों से ज़्यादा प्रभावी साबित हुई है।

डिजिटल साक्षरता का अर्थ : पहुंच के माध्यम से सशक्तिकरण

डिजिटल साक्षरता का अर्थ तकनीकी ज्ञान से कहीं आगे जाता है—यह सशक्तिकरण का प्रतीक है। ग्रामीण भारत में डिजिटल साक्षरता मानव इतिहास के सबसे बड़े और सबसे तेज़ सामाजिक परिवर्तनों में से एक है। यह चुपचाप, गांव- गांव हो रहा है, क्योंकि परिवारों को पता चल रहा है कि एक स्मार्टफोन उन अवसरों से उनका जुड़ाव बन सकता है जिनके बारे में उन्हें पहले पता ही नहीं था।

सार्वजनिक सेवाओं को सुव्यवस्थित करना

जिन सरकारी सेवाओं के लिए पहले ज़िला मुख्यालयों के कई चक्कर लगाने पड़ते थे, वे अब गांवों में डिजिटल कियोस्क के ज़रिए उपलब्ध हैं। जन्म प्रमाण पत्र, राशन कार्ड और लाभ के आवेदन स्थानीय स्तर पर ही पूरे किए जा सकते हैं, जिससे समय और पैसे की बचत होती है और साथ ही कागज़-आधारित व्यवस्थाओं में पनपने वाले भ्रष्टाचार के अवसर भी कम होते हैं।

डिजिटल प्लेटफॉर्म के ज़रिए कृषि विस्तार सेवाओं में क्रांतिकारी बदलाव आया है। किसानों को स्थानीय मिट्टी की स्थिति और मौसम के मिजाज़ को समझने वाले ऐप्स के ज़रिए बीज की किस्मों, उर्वरकों के इस्तेमाल और कीट नियंत्रण के बारे में व्यक्तिगत सलाह मिलती है। इस सटीक मार्गदर्शन से फसल की पैदावार बढ़ी है और लागत भी कम हुई है।

डिजिटल प्लेटफॉर्म ग्रामीण समुदायों को अपनी आवाज़ देते हैं



हिंदी, तेलुगु, तमिल, बंगाली और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में सूचना प्रदान करने वाले प्लेटफ़ॉर्म ग्रामीण क्षेत्रों में तेज़ी से बढ़े हैं। गांवों के कंटेंट क्रिएटर ऐसी सामग्री तैयार कर रहे हैं जो शहरी कंटेंट की तुलना में ग्रामीण दर्शकों को बेहतर ढंग से प्रभावित कर रही है। डिजिटल बुनियादी ढांचा तेज़ी से विस्तार कर रहा है।

भारतनेट का लक्ष्य सभी ग्राम पंचायतों को हाई-स्पीड इंटरनेट से जोड़ना है, जबकि ग्रामीण इलाकों में मोबाइल टावरों का घनत्व हर महीने बढ़ रहा है। शहरी और ग्रामीण इलाकों के बीच डिजिटल खाई ज़्यादातर विशेषज्ञों के अनुमान से कहीं ज़्यादा तेज़ी से कम हो रही है। गांवों के युवा डिजिटल मूल निवासी बन रहे हैं, और अक्सर अपने शहरी साथियों, जो कंप्यूटर के साथ पले-बढ़े हैं, की तुलना में स्मार्टफ़ोन के साथ ज़्यादा सहज होते हैं। वे कंटेंट बना रहे हैं, ऑनलाइन व्यवसाय शुरू कर रहे हैं, और तकनीक का ऐसे नए-नए तरीकों से इस्तेमाल कर रहे हैं जो शहरी पर्यवेक्षकों को हैरान कर रहे हैं। इसका गुणक प्रभाव उल्लेखनीय है। गांवों में एक डिजिटल साक्षर व्यक्ति अक्सर दर्जनों अन्य लोगों के लिए एक संसाधन बन जाता है, जिससे अनौपचारिक नेटवर्क बनते हैं जो डिजिटल कौशल का स्वाभाविक रूप से प्रसार करते हैं। कई मामलों में समुदाय-आधारित शिक्षा औपचारिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों से ज़्यादा प्रभावी साबित हुई है।

यह प्रगति स्पष्ट और तीव्र है। ग्रामीण भारत अभूतपूर्व गति से डिजिटल तकनीक को अपना रहा है, इसे स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप ढाल रहा है और ऐसे नवाचारों का निर्माण कर रहा है जिन्हें शहरी क्षेत्र अक्सर बाद में अपनाते हैं। यह परिवर्तन केवल तकनीकी अपनाने तक ही सीमित नहीं है; यह ग्रामीण समुदायों को अपनी आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों पर नियंत्रण और नियंत्रण प्राप्त करने के बारे में है। ■■

("बाल रक्षा भारत" से साभार)

साक्षरता का सार्थक संदेश



जब हम मानव सभ्यता के इतिहास पर नज़र डालते हैं, तो पाते हैं कि ज्ञान का प्रकाश ही वह पहली किरण है, जिसने मनुष्य को अंधकार से बाहर निकाला। अक्षर-ज्ञान ने ही सभ्यताओं को जन्म दिया और डिजिटल ज्ञान ने उन्हें वैश्विक बना दिया। परंतु हर युग में यह प्रश्न बना रहा कि ज्ञान का उद्देश्य क्या है—सिर्फ़ जानकारी (Information) पाना, या उसे विवेक (Wisdom) और नैतिकता (Morality) के साथ अपनाना।

लगभग 1400 वर्ष पूर्व, एक अनपढ़ समाज में, जब न लिखने का चलन था, न पढ़ने का, तब एक महान क्रांति का आरंभ हुआ। एक गुफ़ा की ख़ामोशी में, फ़रिश्ता जिबरील (अलैहि.) ने अंतिम पैग़म्बर (सल्ल.) को पहली बार ईश्वर का संदेश सुनाया–

"पढ़ो, अपने उस पालनहार के नाम से जिसने पैदा किया। जिसने

समाधान



लुबना सबूब

मनुष्य को जमे हुए ख़ून से पैदा किया। पढ़ो, और तुम्हारा पालनहार बड़ा ही कृपालु है। जिसने क़लम के माध्यम से शिक्षा दी, और मनुष्य को वह सिखाया जो वह नहीं जानता था।"

(क़ुरआन, 96:1-5)

क़ुरआन की यह आयत केवल पढ़ने का आदेश नहीं, बल्कि ज्ञान की मूल आत्मा को परिभाषित करती है कि पढ़ाई और सीखना हमेशा सृजनहार की चेतना और ज़िम्मेदारी के साथ हो। यह शिक्षा के उस आदर्श को सामने लाती है, जिसमें ज्ञान का उद्देश्य समाज को बेहतर, न्यायपूर्ण और मानवीय बनाना है।

डिजिटल युग में जब अक्षर-ज्ञान और तकनीकी दक्षता, दोनों की आवश्यकता है, यह दिव्य आह्वान हमें याद दिलाता है कि ज्ञान का अस्ली मूल्य तभी है, जब वह विवेक, नैतिकता और मानवता के साथ जुड़ा हो। साक्षरता का पूर्ण अर्थ यही है कि वह अज्ञान के अंधकार को हटाकर जीवन को रोशनी से भर दे।

मानव सभ्यता के इतिहास में ज्ञान का यह दिव्य आदेश "पढ़ो" के रूप में आया। यह केवल सूचना अर्जित करने का निर्देश नहीं था, बल्कि ज्ञान को एक पवित्र अमानत के रूप में ग्रहण करने का संदेश था। आज के डिजिटल युग में भी यह संदेश उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि सूचना का समुद्र हमारे सामने है, पर दिशा और उद्देश्य के बिना यह हमें कहीं भी बहा सकता है।

यदि इस दिव्य आदेश को ध्यान से देखें, तो इसमें तीन स्पष्ट आयाम उभरकर सामने आते हैं–

1. पढ़ना — स्वयं को अज्ञानता से मुक्त करना

"पढ़ो" का पहला अर्थ है—अपने आपको अज्ञान (Ignorance) के अंधकार से निकालना। यह केवल पुस्तकों का अध्ययन नहीं, बल्कि जीवन के हर पहलू में सत्य और ज्ञान की खोज है। यह आदेश इस बात पर

मानव सभ्यता के इतिहास में ज्ञान का यह दिव्य आदेश "पढ़ो" के रूप में आया। यह केवल सूचना अर्जित करने का निर्देश नहीं था, बल्कि ज्ञान को एक पवित्र अमानत के रूप में ग्रहण करने का संदेश था। आज के डिजिटल युग में भी यह संदेश उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि सूचना का समुद्र हमारे सामने है, पर दिशा और उद्देश्य के बिना यह हमें कहीं भी बहा सकता है।

ज़ोर देता है कि अज्ञानता से मुक्ति ही सभ्यता की अस्ली शुरुआत है।

2. सृजनहार के नाम से पढ़ना — नैतिक और आध्यात्मिक चेतना

यहां यह स्पष्ट किया गया कि पढ़ना एक निष्पक्ष, ठंडी प्रक्रिया नहीं है। यह ईश्वर के नाम से पढ़ने की बात करता है, यानी नैतिकता और आध्यात्मिक ज़िम्मेदारी के साथ ज्ञान अर्जित करना। इससे यह सुनिश्चित होता है कि ज्ञान का उपयोग ग़लत उद्देश्यों, अन्याय या विनाश के लिए न हो।

3. क़लम से सीखना और सिखाना — ज्ञान का संरक्षण और साझा करना

"जिसने क़लम से शिक्षा दी" — यह वाक्य ज्ञान के संरक्षण (Preservation) और प्रसार (Dissemination) दोनों का प्रतीक है। क़लम यहां स्मृति से लिखित अभिलेख की ओर मानव यात्रा का प्रतिनिधित्व करती है। इससे यह समझ आता है कि ज्ञान को न केवल अर्जित किया जाए, बल्कि उसे आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा जाए और सबके साथ साझा किया जाए।



आज हम ऐसे समय में जी रहे हैं, जिसे "सूचना युग" (Information Age) कहा जाता है। इंटरनेट, स्मार्टफ़ोन, सोशल मीडिया और आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस ने ज्ञान और सूचना को हमारे हाथ की हथेली पर ला दिया है। पहले जहां ज्ञान तक पहुंचने के लिए वर्षों की मेहनत और संसाधनों की ज़रूरत थी, आज कुछ सेकंड में हम किसी भी विषय पर जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

परंतु यही सुविधा एक नई चुनौती भी है—सूचना का अतिरेक (Information Overload)। ज्ञान का यह समुद्र, अगर विवेक और उद्देश्य के बिना हो, तो हमें दिशा देने के बजाय बहा सकता है।

डिजिटल साक्षरता (Digital Literacy) केवल तकनीक का इस्तेमाल करने का नाम नहीं है। इसका अस्ली अर्थ है—सूचना को परखने, सही-ग़लत का भेद करने, और उसका ज़िम्मेदारी से उपयोग करने की क्षमता। यहां फिर वही दिव्य आदेश याद आता है—"पढ़ो, अपने पालनहार के नाम से"। यानी केवल पढ़ो नहीं, बल्कि सोचो कि जो पढ़ रहे हो, उसका समाज और मानवता पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

पारंपरिक दृष्टि से साक्षरता का अर्थ है—पढ़ने और लिखने की क्षमता। परंतु यह परिभाषा अधूरी है। वास्तविक साक्षरता का अर्थ है–

- तथ्य और सत्य में अंतर कर पाना।
- ज्ञान का रचनात्मक और नैतिक उपयोग।
- अज्ञान और अंधविश्वास के स्थान पर तर्क और न्याय को स्थापित करना।

इस दृष्टि से देखें, तो क़ुरआन की यह पहली आयत साक्षरता की पूर्ण परिभाषा देती है—एक ऐसी साक्षरता जो आत्मा, विवेक और समाज को एक साथ रोशन करती है।

इतिहास में ज्ञान और शक्ति हमेशा एक साथ जुड़े रहे हैं। जिसे ज्ञान मिला, उसने शक्ति पाई—परंतु जब ज्ञान नैतिकता से अलग हुआ, तो वही शक्ति विनाश का कारण बनी। डिजिटल युग में यह ख़तरा कई गुना बढ़ गया है। आज डेटा, आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस और एल्गोरिद्म के ज़रिए समाज को प्रभावित किया जा सकता है। फ़ेक न्यूज़, साइबर क्राइम और डिजिटल मैनिपुलेशन इसकी कुछ झलकियां हैं।

यहीं पर ज्ञान का नैतिक आधार महत्वपूर्ण हो जाता है। केवल तकनीकी दक्षता (Technical Skill) पर्याप्त नहीं है—हमें डिजिटल नैतिकता (Digital Ethics) की भी ज़रूरत है।

चाहे हम किताब के पन्ने पलट रहे हों या स्मार्टफ़ोन की स्क्रीन, हमें यह याद रखना होगा कि ज्ञान का असली मूल्य तभी है, जब वह अज्ञान के अंधकार को हटाकर जीवन और समाज को रोशनी से भर दे।



यह वही चेतना है, जो "पालनहार के नाम से पढ़ो" के सिद्धांत में निहित है।

ज्ञान कभी व्यक्तिगत संपत्ति नहीं होता। यह समाज के लिए एक अमानत (Trust) है। इस दृष्टि से, हर व्यक्ति जो पढ़ सकता है, लिख सकता है, या तकनीक का उपयोग कर सकता है—उस पर यह ज़िम्मेदारी है कि वह इस शक्ति का उपयोग भलाई, न्याय और मानवता की सेवा में करे।

डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म पर यह ज़िम्मेदारी और भी बढ़ जाती है, क्योंकि एक व्यक्ति के शब्द और विचार लाखों तक पहुंच सकते हैं। एक क्लिक में आप या तो सच का प्रकाश फैला सकते हैं या झूठ का अंधकार।

अगर हम इस दिव्य आदेश को आज के डिजिटल युग में लागू करें, तो इसका अर्थ होगा–

• केवल गूगल सर्च करना ही पढ़ना नहीं है; अस्ली पढ़ाई है स्रोत की सत्यता को परखना।

• केवल सोशल मीडिया पोस्ट पढ़ना ही पढ़ाई नहीं; अस्ली पढ़ाई है विषय के पीछे की पृष्ठभूमि और सच्चाई को समझना।

• केवल तकनीक का इस्तेमाल करना ही ज्ञान नहीं; अस्ली ज्ञान है तकनीक को समाज के सुधार के लिए इस्तेमाल करना।

सभ्यता का इतिहास बताता है कि ज्ञान का प्रकाश ही वह पहली किरण है, जिसने मनुष्य को अंधकार से बाहर निकाला। यह प्रकाश आज भी उतना ही ज़रूरी है, बल्कि पहले से अधिक—क्योंकि अंधकार अब केवल निरक्षरता का नहीं, बल्कि ग़लत जानकारी, पूर्वाग्रह और डिजिटल भ्रम का भी है।

क़ुरआन का पहला आदेश "पढ़ो" हमें याद दिलाता है कि साक्षरता केवल अक्षरों की पहचान नहीं, बल्कि सत्य, न्याय और मानवता की पहचान है। डिजिटल युग में साक्षरता का अर्थ है—सूचना को विवेक, नैतिकता और करुणा के साथ अपनाना।

इसलिए, चाहे हम किताब के पन्ने पलट रहे हों या स्मार्टफ़ोन की स्क्रीन, हमें यह याद रखना होगा कि ज्ञान का अस्ली मूल्य तभी है, जब वह अज्ञान के अंधकार को हटाकर जीवन और समाज को रोशनी से भर दे। ■■

हमेशा से

कविता



ओमप्रकाश बजाज

कुछ चीज़ें कुछ बातें अपने यहां
हमेशा से होती चली आयी हैं !

उनमें यदि कोई बदलाव हुआ है तो
बिगाड़ में सुधार में नहीं !

जैसे अफ़सर के चपरासी का रुतबा
अफ़सर से भी बड़ा होता है।

नेता और नौकरशाह का बेटा अपने को
हर क़ानून से ऊपर और परे मानता है !

वृद्धाश्रमों में बुज़ुर्गों के साथ और अनाथालयों में
अनाथ बच्चों के साथ अमानवीय
व्यवहार एक आम बात है !

अपवादों को छोड़कर एक सामान्य सरकारी
कर्मचारी का रवैया आम लोगों के साथ
अपमानजनक ही होता है...।

स्वच्छ ऊर्जा अब विकल्प नहीं, आवश्यकता है



आग की खोज से लेकर भाप की ताक़त के दोहन और परमाणु-विखंडन की शक्ति को समझने तक, ऊर्जा ने मानव सभ्यता की गति, दिशा और कल्पना को बदला है। लेकिन आज, जब हम जलवायु संकट की गंभीर चेतावनी से घिरे हुए हैं, ऊर्जा केवल विकास का साधन नहीं, बल्कि अस्तित्व की शर्त बन चुकी है। यह वह समय है जब ऊर्जा नीति केवल तकनीकी या आर्थिक विषय नहीं रह गई, बल्कि सामाजिक न्याय, वैश्विक सुरक्षा और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व से सीधे जुड़ी हुई है। ऐसे ऐतिहासिक मोड़ पर, जब अक्षय ऊर्जा (Renewable Energy) के युग का उदय हो रहा है, भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों के लिए यह परिवर्तन केवल आवश्यकता नहीं, बल्कि एक निर्णायक अवसर भी है।

वर्ष 2023 में वैश्विक रूप से जो नई बिजली उत्पादन क्षमता जोड़ी गई, उसका लगभग 86% हिस्सा नवीकरणीय स्रोतों, विशेष रूप से सौर और पवन ऊर्जा से आया। यह बदलाव आकस्मिक नहीं है, बल्कि वैश्विक चेतना, नीति-निर्माण और तकनीकी नवाचार का प्रतिफल है।

पर्यावरण



डॉ. प्रदीप कुमार

अब अधिकांश देशों में सौर और पवन ऊर्जा सबसे सस्ते और टिकाऊ ऊर्जा स्रोत बन चुके हैं। उदाहरण के लिए, utility-scale सौर ऊर्जा की लागत $24–$60 प्रति मेगावाट घंटा है, जबकि कोयले की लागत $65–$150 प्रति मेगावाट घंटा तक जाती है। इसके बावजूद, वैश्विक स्तर पर जीवाश्म ईंधनों को भारी सब्सिडी दी जा रही है। अनुमानतः सालाना $7 ट्रिलियन तक की, जो न केवल पर्यावरण के लिए हानिकारक है, बल्कि हरित ऊर्जा के विकास में भी बाधक है।

भारत वर्तमान में विश्व का तीसरा सबसे बड़ा ऊर्जा उपभोक्ता है और ऊर्जा की मांग प्रतिवर्ष लगभग 4-5% की दर से बढ़ रही है। यह बढ़ती मांग भारत के आर्थिक विकास, शहरीकरण और बढ़ती जनसंख्या का परिणाम है। हालांकि, यह विकास जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता के साथ आता है, जो आर्थिक और पर्यावरणीय दोनों मोर्चों पर संकट का कारण बनता है।

भारत में वर्तमान में कुल स्थापित विद्युत क्षमता का लगभग 43% हिस्सा नवीकरणीय स्रोतों से आता है, लेकिन बिजली उत्पादन में इनका वास्तविक योगदान लगभग 30% के

आसपास ही है। इसका कारण है सौर और पवन ऊर्जा की इंटरमिटेंसी, यानी इनका उत्पादन मौसम और समय पर निर्भर होता है।

सरकार ने 2030 तक 500 गीगावाट नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता का महत्वाकांक्षी लक्ष्य रखा है। यह लक्ष्य पेरिस जलवायु समझौते में भारत की प्रतिबद्धता का हिस्सा है, लेकिन इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नीतिगत स्पष्टता, निवेश और सार्वजनिक-निजी भागीदारी आवश्यक है।

आज जब हम जलवायु संकट की गंभीर चेतावनी से घिरे हुए हैं, ऊर्जा केवल विकास का साधन नहीं, बल्कि अस्तित्व की शर्त बन चुकी है। यह वह समय है जब ऊर्जा नीति केवल तकनीकी या आर्थिक विषय नहीं रह गई, बल्कि सामाजिक न्याय, वैश्विक सुरक्षा और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व से सीधे जुड़ी हुई है।



भारत के लिए छह रणनीतिक स्तंभ

1. नीतिगत स्पष्टता और क्रियान्वयन की प्रतिबद्धता : घोषणाओं से आगे बढ़कर केंद्र और राज्यों को समन्वय करते हुए व्यापक "Renewable Energy Act" की दिशा में काम करना चाहिए। इससे निवेशकों को स्थायित्व और पारदर्शिता का संकेत मिलेगा। MNRE, नीति आयोग और बिजली मंत्रालय को मिलकर दीर्घकालिक रोडमैप बनाना चाहिए।

2. आधुनिक ऊर्जा प्रणाली निर्माण : ग्रिड स्थिरता अक्षय ऊर्जा की सफलता की कुंजी है। इसके लिए बैटरी स्टोरेज, पंप हाइड्रो स्टोरेज और स्मार्ट ग्रिड जैसी तकनीकों में निवेश अनिवार्य है। इसके अलावा, ग्रीन हाइड्रोजन और फ्लोटिंग सोलर जैसी नई तकनीकों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

3. स्थानीय ऊर्जा समाधान: ग्रामीण और क़स्बाई क्षेत्रों में विकेंद्रीकृत अक्षय ऊर्जा परियोजनाएं — जैसे रूफटॉप सोलर, मिनी ग्रिड और सामुदायिक ऊर्जा भंडारण — न केवल आत्म-निर्भरता को बढ़ाती हैं, बल्कि रोज़गार भी सृजित करती हैं। ऊर्जा को लोक-केंद्रित बनाना भारत जैसे देश में अत्यंत आवश्यक है।

4. ऊर्जा न्याय : आज भी भारत में लाखों लोग या तो बिजली से वंचित हैं या उन्हें अस्थिर आपूर्ति मिलती है। ऊर्जा न्याय का अर्थ है — स्वच्छ, सस्ती और भरोसेमंद ऊर्जा हर नागरिक तक पहुंचना। इसमें सामाजिक दृष्टिकोण के साथ योजनाओं को लागू करने की आवश्यकता है, ताकि हाशिए पर रह रहे समुदायों को प्राथमिकता दी जा सके।

5. अंतरराष्ट्रीय नेतृत्व : भारत को सौर पैनल, बैटरियों और ग्रीन टेक उपकरणों के निर्माण में आत्म-निर्भर बनना होगा। "मेक इन इंडिया" को वैश्विक ग्रीन मैन्युफैक्चरिंग केंद्र के रूप में स्थापित करना चाहिए। साथ ही, दक्षिण एशिया, अफ्रीका और मध्य एशिया में अक्षय ऊर्जा तकनीक और उत्पादों का निर्यात बढ़ाया जा सकता है।

6. वैश्विक साझेदारी : IRENA (International Renewable Energy Agency), ISA (International Solar Alliance), और G20 जैसे मंचों के माध्यम से भारत न केवल तकनीकी बल्कि वित्तीय और नीतिगत समर्थन देकर अन्य विकासशील देशों में अक्षय ऊर्जा के प्रसार में भागीदार बन सकता है। यह भारत की वैश्विक स्थिति को भी सुदृढ़ करेगा।

रोज़गार और अर्थव्यवस्था पर प्रभाव हर 10 मेगावाट सौर परियोजना निर्माण चरण में लगभग 80–100 अस्थायी और संचालन में 15–20 स्थायी रोज़गार उत्पन्न करती है। 2030 तक हरित ऊर्जा क्षेत्र में लगभग 10 लाख प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रोज़गार सृजन की संभावना है। यह न केवल युवाओं के लिए अवसर है, बल्कि स्किल इंडिया और आत्म-निर्भर भारत जैसे अभियानों को भी बल प्रदान करता है।

भारत में कोयला, डीज़ल और गैस पर अब भी अरबों रुपये की सब्सिडी दी जाती है। यदि इस राशि का एक हिस्सा नवीकरणीय ऊर्जा क्षेत्र में स्थानांतरित किया जाए—जैसे



बैटरी स्टोरेज, रिसर्च, ग्रीन हाइड्रोजन और स्किल डेवलपमेंट — तो यह न केवल हरित संक्रमण को तेज़ करेगा, बल्कि दीर्घकालिक रूप से राजकोषीय संतुलन भी बनाएगा।

भारत जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से सर्वाधिक प्रभावित देशों में है। बढ़ती हीटवेव, बाढ़, सूखा और मौसम की अनिश्चितता ने कृषि, स्वास्थ्य और अर्थव्यवस्था को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। अक्षय ऊर्जा अब केवल एक पर्यावरणीय विकल्प नहीं, बल्कि भारत के लिए जीवन और विकास की अनिवार्यता बन चुकी है।

ऊर्जा संक्रमण केवल सरकार या उद्योग की ज़िम्मेदारी नहीं है। मीडिया को इस विषय पर जागरूकता बढ़ाने, मिथकों को तोड़ने और सफल उदाहरण सामने लाने की ज़रूरत है। नागरिकों को रूफटॉप सोलर अपनाने, ऊर्जा दक्ष उपकरणों का उपयोग करने और हरित आदतों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। शिक्षा प्रणाली में भी अक्षय ऊर्जा और जलवायु शिक्षा को सम्मिलित करना समय की मांग है।

आज एक नया ऊर्जा युग हमारे द्वार पर खड़ा है। यह युग भारत को आत्म-निर्भर बना सकता है, आर्थिक विकास को नया आधार दे सकता है, और हमारे बच्चों के लिए एक सुरक्षित, स्वच्छ भविष्य सुनिश्चित कर सकता है। भारत को चाहिए कि वह इस ऐतिहासिक अवसर को केवल 'संभावना' के रूप में न देखे, बल्कि इसे 'राष्ट्रीय प्राथमिकता' के रूप में अपनाए।

नवीकरणीय ऊर्जा अब विकल्प नहीं, बल्कि आवश्यकता है और इसे अवसर में बदलना ही आज की सबसे बड़ी नीति और सामाजिक चुनौती है। ■■



भारत का भविष्य : आंकड़े, आशंकाएं और अपेक्षाएं

दृष्टिकोण



मयसम ज़ारा

जब भी किसी देश के भविष्य की चर्चा होती है तो वह केवल आर्थिक विकास के आंकड़ों या वैश्विक रैंकिंग के चश्मे से नहीं देखी जा सकती। दरअस्ल, किसी राष्ट्र का भविष्य उसकी नीतियों, आंतरिक स्थिरता, नागरिक चेतना और वैश्विक दृष्टिकोण की गहराई पर भी निर्भर करता है। भारत के संदर्भ में यह सवाल और भी अहम हो जाता है, क्योंकि 21वीं सदी में जिस देश के पास अपार संभावनाएं हैं, उसके अंदरूनी हालात कई बार चिंताओं को जन्म देते हैं।

आंकड़ों की चमक और भविष्य की झलक

यदि केवल आर्थिक दृष्टि से देखें तो भारत का भविष्य चमकदार दिखाई देता है। अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष (IMF) और विश्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार, 2024 में भारत की जीडीपी 4.18 ट्रिलियन डॉलर तक पहुंच चुकी है, जिससे वह दुनिया की पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन चुका है। अमेरिका (30.5 ट्रिलियन) और चीन (19.23 ट्रिलियन) के बाद भारत की यह छलांग, निस्संदेह, वैश्विक मंच पर उसकी स्थिति को मज़बूत करती है।

वर्ष 2030 तक की प्रोजेक्शन रिपोर्ट्स और रणनीतिक सर्वेक्षण यह दर्शाते हैं कि भारत चीन के बाद विश्व का दूसरा सबसे प्रभावशाली देश बन सकता है, न केवल आर्थिक दृष्टि से बल्कि सामरिक, सामाजिक और कूटनीतिक प्रभावों के लिहाज़ से भी।

वर्ष 2030 तक की प्रोजेक्शन रिपोर्ट्स और रणनीतिक सर्वेक्षण यह दर्शाते हैं कि भारत चीन के बाद विश्व का दूसरा सबसे प्रभावशाली देश बन सकता है, न केवल आर्थिक दृष्टि से बल्कि सामरिक, सामाजिक और कूटनीतिक प्रभावों के लिहाज़ से भी।

सिर्फ़ जीडीपी नहीं, सामाजिक संतुलन भी ज़रूरी

हालांकि जीडीपी एक महत्वपूर्ण आर्थिक संकेतक है, लेकिन किसी राष्ट्र की सच्ची ताक़त उसके सामाजिक ताने-बाने, संस्थागत ईमानदारी और नागरिक भागीदारी से आंकी जाती है। भारत इस मोर्चे

पर उतना संतोषजनक प्रदर्शन नहीं कर पा रहा है, जितनी उम्मीद की जाती है।

मानव विकास सूचकांक (HDI), प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक, लैंगिक समानता, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं और न्यायिक संरचना, इन सभी क्षेत्रों में भारत की स्थिति औसत या उससे नीचे है। ऐसे में सवाल उठता है कि क्या केवल अर्थव्यवस्था की रफ़्तार से ही कोई राष्ट्र वैश्विक नेतृत्व के योग्य बन सकता है?

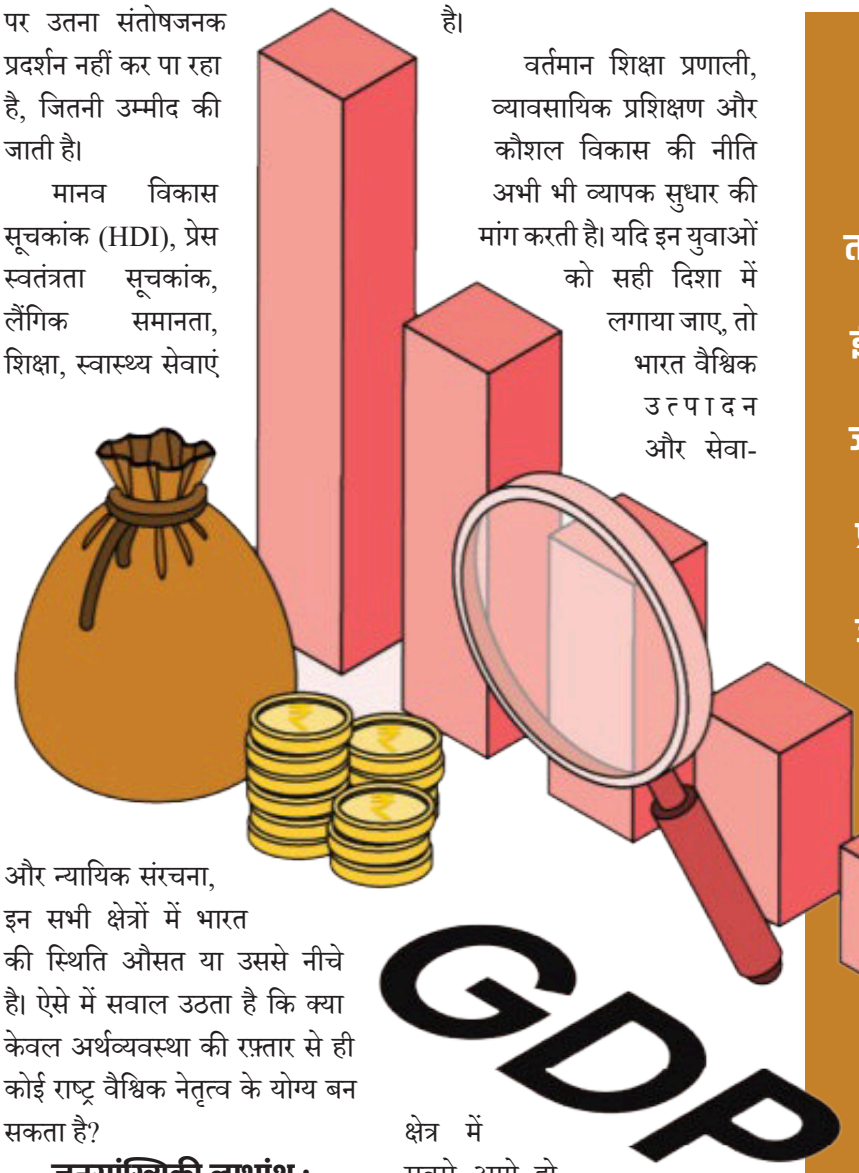

जनसांख्यिकी लाभांश : वरदान या अभिशाप?

भारत की सबसे बड़ी पूंजी उसकी जनसंख्या है। 145 करोड़ की आबादी और दुनिया की सबसे बड़ी युवा शक्ति देश को जनसांख्यिकीय लाभांश (Demographic Dividend) का वरदान दे सकती है, परंतु यदि यही युवा शक्ति बेरोज़गारी, कट्टरता और दिशाहीनता की शिकार हो गई, तो यह वरदान एक सामाजिक अभिशाप में बदल सकता है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली, व्यावसायिक प्रशिक्षण और कौशल विकास की नीति अभी भी व्यापक सुधार की मांग करती है। यदि इन युवाओं को सही दिशा में लगाया जाए, तो भारत वैश्विक उत्पादन और सेवा-क्षेत्र में सबसे आगे हो सकता है।

न्यायपालिका और नीति-निर्माण : कमज़ोर कड़ी

भारत का न्यायिक ढांचा एक लोकतांत्रिक देश के लिए आवश्यक सबसे मज़बूत स्तंभ माना जाता है, लेकिन हाल के वर्षों में इसकी कार्यप्रणाली पर सवाल उठे हैं। विशेष रूप से ग़रीबों, वंचितों और अल्पसंख्यकों को न्याय दिलाने में जो

हालांकि जीडीपी एक महत्वपूर्ण आर्थिक संकेतक है, लेकिन किसी राष्ट्र की सच्ची ताक़त उसके सामाजिक ताने-बाने, संस्थागत ईमानदारी और नागरिक भागीदारी से आंकी जाती है। भारत इस मोर्चे पर उतना संतोषजनक प्रदर्शन नहीं कर पा रहा है, जितनी उम्मीद की जाती है। मानव विकास सूचकांक (HDI), प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक, लैंगिक समानता, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं और न्यायिक संरचना,इन सभी क्षेत्रों में भारत की स्थिति औसत या उससे नीचे है। ऐसे में सवाल उठता है कि क्या केवल अर्थव्यवस्था की रफ्तार से ही कोई राष्ट्र वैश्विक नेतृत्व के योग्य बन सकता है?



सुस्ती, पक्षपात या ढीलापन दिखता है, वह लोकतंत्र की आत्मा को झकझोरता है।

वहीं, नीतिगत निर्णयों में पारदर्शिता की कमी, सत्ताधारी वर्ग की जवाबदेही की गिरावट और राजनीतिक नैतिकता का क्षरण देश के भविष्य को ख़तरे में डाल सकता है। जिस देश का नेतृत्व केवल चुनावी जीत और सांप्रदायिक ध्रुवीकरण पर केंद्रित हो, वह दीर्घकालिक राष्ट्रीय निर्माण की सोच कैसे रख सकता है?

समावेशिता बनाम विभाजन

यह सत्य है कि भाजपा के नेतृत्व वाली मौजूदा सरकार ने बुनियादी ढांचे, डिजिटलीकरण और विदेशी निवेश के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किए हैं, लेकिन साथ ही यह भी उतना ही सत्य है कि इस विकास की छाया में सामाजिक विभाजन, नफ़रत और ध्रुवीकरण की राजनीति ने भी ज़ोर पकड़ा है। मुस्लिम, ईसाई, दलित और आदिवासी समुदायों को लगातार संदेह की नज़र से देखा जाना, 'देशभक्ति' और 'राष्ट्रविरोध' की धुंधली रेखाओं में अल्पसंख्यकों को घसीटना, मीडिया

हाल के वर्षों में न्यायिक कार्यप्रणाली पर सवाल उठे हैं। वहीं, नीतिगत निर्णयों में पारदर्शिता की कमी, सत्ताधारी वर्ग की जवाबदेही की गिरावट और राजनीतिक नैतिकता का क्षरण देश के भविष्य को ख़तरे में डाल सकता है।

ट्रायल और क़ानून का चयनात्मक प्रयोग, ये सभी प्रवृत्तियां भारत के संवैधानिक ढांचे के विपरीत जाती हैं।

एक ओर भारत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की बात करता है, दूसरी ओर अल्पसंख्यकों को हाशिए पर धकेलने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। अगर यही रास्ता जारी रहा, तो वैश्विक मंच पर भारत की नैतिक विश्वसनीयता और लोकतांत्रिक छवि को भारी क्षति पहुंचेगी।

कूटनीति में नई उचाइयां, पर नैतिकता का संकट

अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारत ने अपनी स्थिति को मज़बूत किया है। क्वाड (QUAD), G-20, ब्रिक्स और संयुक्त राष्ट्र में भारत की सक्रिय भूमिका यह दिखाती है कि विश्व उसे एक ज़िम्मेदार शक्ति के रूप में स्वीकार करने को तैयार है। लेकिन सवाल यह भी है कि क्या भारत की घरेलू नीतियां उसी ज़िम्मेदारी और उदारता को दर्शाती हैं? जिस देश के अंदर नफ़रत, असहिष्णुता और असमानता पनप रही हो, क्या वह वैश्विक नेतृत्व की नैतिक ज़िम्मेदारी उठा सकता है?

संभावनाओं की सुनहरी किरणें

नकारात्मकताओं के बीच

आशा की किरणें भी मौजूद हैं। भारत का नागरिक समाज जागरूक हो रहा है। मीडिया के कुछ स्वतंत्र मंच, कुछ ईमानदार न्यायमूर्ति, सामाजिक कार्यकर्ता, शिक्षाविद् और युवा वर्ग, ये सब एक वैकल्पिक विमर्श को जन्म दे रहे हैं।

भारत के भीतर परिवर्तन की मांग अब केवल भाषणों तक सीमित नहीं रही, यह ज़मीनी स्तर तक पहुंच रही है। कृषि सुधार, पर्यावरणीय चेतना, लैंगिक समानता और समावेशी शिक्षा की मांगों ने नई बहसों को जन्म दिया है।

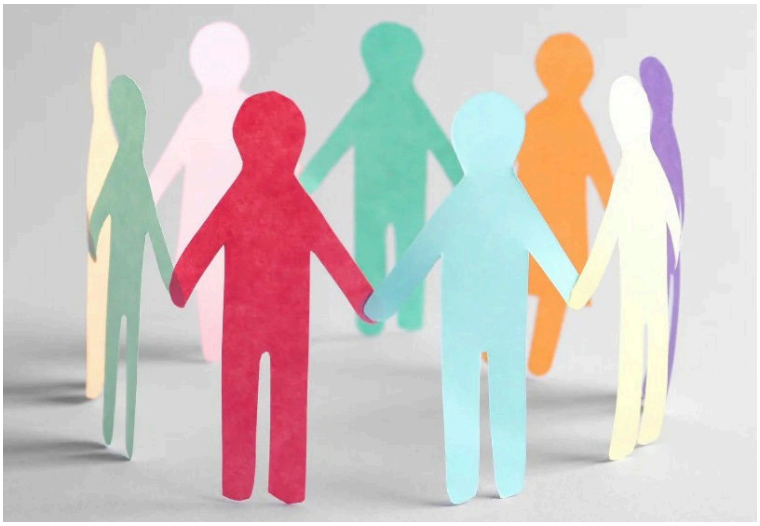

सपना कैसे साकार होगा?

भारत के सुनहरे भविष्य के लिए ज़रूरी है कि राजनीतिक नेतृत्व अपने दृष्टिकोण में बदलाव लाए और सत्ता को सेवा का माध्यम माने, न कि वर्चस्व का। समाज में सहिष्णुता, समावेशिता और भाईचारे को बढ़ावा दिया जाए। शिक्षा प्रणाली को वैज्ञानिक, व्यावसायिक और नैतिक मूल्यों से युक्त किया जाए। न्यायिक व्यवस्था में पारदर्शिता और समयबद्धता सुनिश्चित हो। मीडिया और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को पुनः स्थापित किया जाए, ताकि जनमत का सही प्रतिबिंब उभरे।



भारत दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी शक्ति बन सकता है। यह केवल एक आर्थिक पूर्वानुमान नहीं, बल्कि एक ऐतिहासिक संभावना है। परंतु इस संभावना को साकार करने के लिए भारत को केवल ऊंचे पुल और ऊंची इमारतें नहीं, बल्कि ऊंची सोच, गहरी आत्मा और व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

यदि भारत ने नफ़रत की राजनीति को छोड़कर, समावेशी विकास, न्याय और सामाजिक एकता की राह अपनाई, तो वह न केवल महाशक्ति बनेगा, बल्कि एक नैतिक आदर्श भी प्रस्तुत करेगा। वरना यह सपना, महज़ एक अधूरी इच्छा बनकर रह जाएगा, इतिहास के किसी हाशिये पर।

■■

न्याय : प्रक्रिया नहीं, परम मूल्य



प्रकाश स्तंभ



अबरार हसन

मनुष्य के सामाजिक जीवन की सबसे बुनियादी और आवश्यक शर्त है – न्याय। यह केवल कोई क़ानूनी अवधारणा नहीं, बल्कि इंसानी आत्मा की गहराई से जुड़ा हुआ वह मूल्य है जो सभ्यता, संस्कृति और धर्म की आत्मा है। हर व्यवस्था, चाहे वह धर्म आधारित हो या धर्मनिरपेक्ष, न्याय को अपना आधार मानती है, लेकिन सवाल यह है कि क्या न्याय केवल क़ानून के दायरे में सीमित होता है या इसके परे भी कोई सतह होती है जो नज़रों से ओझल होने के बावजूद अधिक सच्ची होती है?

न्याय की जड़ें

हमारे समय की न्यायिक व्यवस्था केवल दस्तावेज़ों और सुबूतों की भाषा समझती है। अगर सुबूत नहीं, तो सत्य भी अदालत में मौन रह जाता है, लेकिन मनुष्य के अंदर एक ऐसी नैतिक चेतना होती है जो किसी भी अन्याय को बिना तर्क के पहचान लेती है। एक बच्चा जिसे न्याय या क़ानून का कोई औपचारिक ज्ञान नहीं, वह भी तब रो पड़ता है जब उसके साथ भेदभाव होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि न्याय केवल सामाजिक-संवैधानिक संरचना नहीं, बल्कि आत्मा की गहराई से उपजा हुआ सिद्धांत है।

विधिक बनाम नैतिक न्याय

समाज में न्याय तब तक अधूरा रहता है जब तक वह केवल काग़ज़ों में हो। एक बूढ़ा किसान जो अपने खेत के लिए पीढ़ियों से लड़ रहा हो, लेकिन दस्तावेज़ों की एक कमी के चलते उसे बेघर कर दिया जाए—तो क़ानून चाहे जो भी कहे, आत्मा जानती है कि यह अन्याय है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना (Preamble) "न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व" की बात करती है, लेकिन जब समाज में समानता केवल काग़ज़ों पर हो और ज़मीनी स्तर पर वर्ग, धर्म, जाति और लिंग के आधार पर भेदभाव हो, तब यह न्याय अधूरा रह जाता है। जब किसी अल्पसंख्यक की बात को देशद्रोह कहा जाए, जब किसी महिला को न्याय पाने के लिए वर्षों अदालतों के चक्कर लगाने पड़ें, जब किसी ग़रीब को सिर्फ़ इसलिए जेल में सड़ना पड़े कि उसके पास महंगे वकील की फ़ीस नहीं, तो हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि समाज ने न्याय की आत्मा को खो दिया है।

दुनिया में न्याय का संकट

आज जब न्याय के नाम पर

राजनीति हो रही है, जब अदालतें भी दबावों में आ रही हैं, जब मीडिया ट्रायल, सोशल मीडिया फेक न्यूज़ और न्याय प्रक्रिया में देरी सामान्य बात हो गई है—तो हमें पुनः यह विचार करना होगा कि न्याय का मूल स्रोत क्या है।

क्या न्याय केवल अदालत के आदेश से आता है? क्या न्याय केवल साक्ष्यों की प्रस्तुति है? या फिर यह आत्मा की वह तड़प है जो कहती है—"मुझे मेरा हक़ चाहिए"?

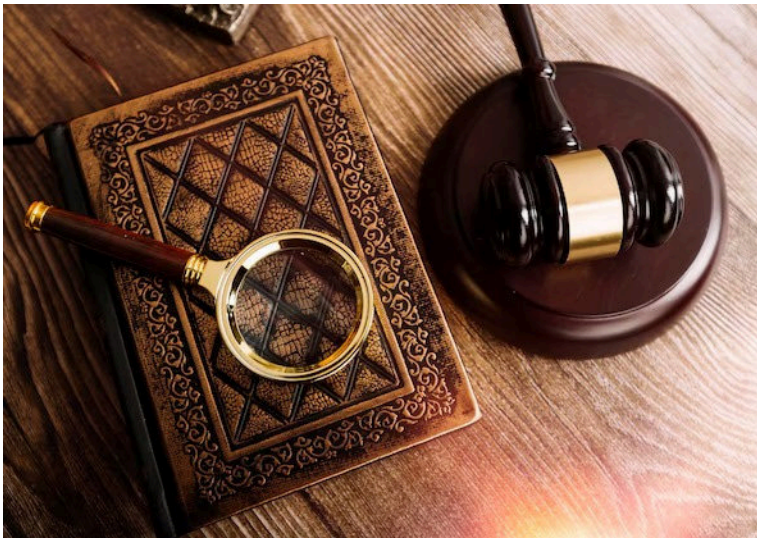

न्याय : केवल प्रक्रिया नहीं, परम मूल्य

जब हम "न्याय" कहते हैं, तो वह केवल नियमों की अनुपालना नहीं होता, बल्कि वह सत्य और विवेक की साझी चेतना का नाम है। यह वह मूल्य है जो किसी समाज की आत्मा को संरचना देता है।

न्याय वह कसौटी है जिस पर सभ्यता और बर्बरता का अंतर तय होता है। जो समाज न्याय को दरकिनार कर देता है, वह धीरे-धीरे एक शोरगुल भरी भीड़ बन जाता है, जहां हर व्यक्ति डर, लालच और शक्ति के बीच झूलता रहता है।

न्याय केवल कोर्ट में नहीं, इंसान के दिल में भी होना चाहिए। न्याय केवल तराज़ू के पलड़े नहीं, आत्मा की सच्चाई से तौला जाना चाहिए। यह विचार केवल धार्मिक किताबों में नहीं, बल्कि आधुनिक न्यायशास्त्र में भी धीरे-धीरे स्वीकार्य हो रहा है। अब यह समझ बन रही है कि 'लीगल जस्टिस' और 'मोरल जस्टिस' में अंतर है।

आज का न्यायशास्त्र भी धीरे-धीरे इस सत्य को स्वीकार कर रहा है कि 'लीगल जस्टिस' और 'मोरल जस्टिस' अलग-अलग होते हैं। Restorative justice, victim-centric justice, और ethical jurisprudence जैसे आधुनिक विचार इसी ओर इशारा करते हैं।

न्याय के बारे में अत्यंत सशक्त और सर्वसमावेशी दृष्टिकोण

क़ुरआन का दृष्टिकोण न्याय के बारे में अत्यंत सशक्त और सर्वसमावेशी है। क़ुरआन केवल दंड के नियम नहीं देता, बल्कि न्याय को ईश्वरीय आदेश और नैतिक उत्तरदायित्व के रूप में प्रस्तुत करता है। इसका अर्थ यह है कि न्याय केवल निष्पक्षता नहीं, बल्कि वह संवेदना भी है जो वंचित को सहारा देती है।

"ऐ ईमान वालो! न्याय पर दृढ़ता से क़ायम रहने वाले बनो, अल्लाह के लिए गवाही देने वाले, चाहे वह गवाही तुम्हारे अपने ख़िलाफ़ हो, या तुम्हारे मां-बाप और रिश्तेदारों के ख़िलाफ़।"

(क़ुरआन, 4:135)

न्याय करना केवल दूसरों के साथ नहीं, स्वयं के विरुद्ध भी आवश्यक है। न्याय को 'अल्लाह के लिए' करना है, न कि किसी स्वार्थ के लिए।

"ऐ ईमान वालो! अल्लाह के लिए न्याय पर क़ायम रहो और न्याय की गवाही दो। किसी क़ौम की दुश्मनी तुम्हें इस बात पर न उकसाए कि तुम न्याय न करो। न्याय करो—यही तक़वा (ईशपरायणता) के अधिक क़रीब है।"

(क़ुरआन, 5:8)

न्याय निष्पक्ष हो, भले सामने वाला दुश्मन ही क्यों न हो। न्याय भावनाओं से ऊपर उठकर किया जाना चाहिए।

"निःसंदेह अल्लाह आदेश देता

है न्याय (अद्ल) का, सद्व्यवहार (एहसान) का और रिश्तेदारों को देने का...।" (क़ुरआन, 16:90)

यह आयत जुमे के ख़ुत्बों में अक्सर पढ़ी जाती है। 'न्याय' को अल्लाह का पहला सार्वजनिक हुक्म बताया गया है। क़ुरआन बार-बार न्याय (Justice) को—ईमान का हिस्सा, अल्लाह का हुक्म, पैग़म्बरी मिशन का उद्देश्य और एक सार्वभौमिक मानवीय मूल्य के रूप में सामने रखता है।

क़ुरआन में दो शब्द विशेष रूप से न्याय के लिए प्रयुक्त हुए हैं—अद्ल और क़िस्त। अद्ल का अर्थ होता है संतुलन, तुल्यता और निष्पक्षता और क़िस्त का अर्थ है वह न्याय जिसमें किसी को उसका हक़ देकर सच्चा संतुलन स्थापित किया जाए।

आधुनिक न्यायशास्त्र और क़ुरआनी विचार की संगति

आज का न्यायशास्त्र भी धीरे-धीरे इस सत्य को स्वीकार कर रहा है कि 'लीगल जस्टिस' और 'मोरल जस्टिस' अलग-अलग होते हैं। Restorative justice, victim-centric justice, और ethical jurisprudence जैसे आधुनिक विचार इसी ओर इशारा करते हैं, लेकिन क़ुरआन यह बात सदियों पहले कह चुका है। उसमें केवल सज़ा नहीं, सुधार की भी बात है; केवल अपराध की नहीं, ज़ुल्म की पहचान भी है।

आज ज़रूरत है कि हम न्याय को केवल अदालत की इमारत में क़ैद न करें। उसे अपने व्यवहार, निर्णयों और सोच में उतारें। वह चाहे परिवार हो या समाज, दफ़्तर हो या संसद—हर जगह न्याय होना चाहिए, और वह भी ऐसा जो आत्मा को भी सुकून दे।

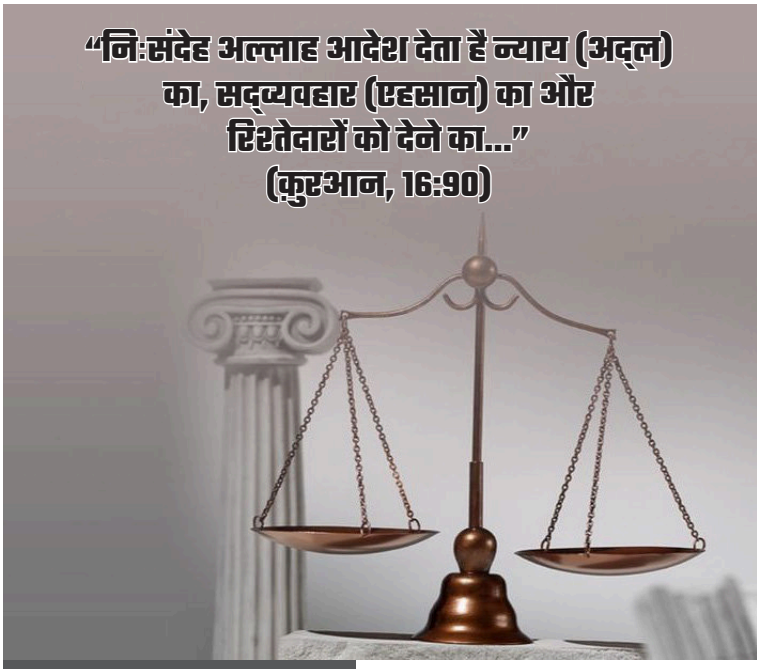

आज ज़रूरत है कि हम न्याय को केवल अदालत की इमारत में कैद न करें। उसे अपने व्यवहार, निर्णयों और सोच में उतारें। वह चाहे परिवार हो या समाज, दफ़्तर हो या संसद—हर जगह न्याय होना चाहिए, और वह भी ऐसा जो आत्मा को भी सुकून दे।

न्याय का अर्थ केवल न्यायिक आदेश नहीं, बल्कि वह संतुलन है जो आत्मा को संतुष्टि दे। क़ुरआन की दृष्टि में न्याय केवल क़ानूनी प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक अभ्यास है– जो सत्य, करुणा, विवेक और हक़ के आधार पर क़ायम होता है।

आधुनिक न्यायशास्त्र भी यह मानते हैं कि न्याय को केवल सज़ा या नियम पालन नहीं, बल्कि मानवीय गरिमा, सामाजिक पुनर्संरचना और नैतिक ज़िम्मेदारी के रूप में देखना चाहिए।

क़ुरआन का दृष्टिकोण न्याय के बारे में अत्यंत सशक्त है, क्योंकि वह न्याय को ईश्वर का आदेश मानता है। यह दृष्टिकोण सर्वसमावेशी है, क्योंकि वह न्याय को हर परिस्थिति, हर व्यक्ति और हर संबंध पर लागू करता है—चाहे वह मित्र हो या दुश्मन, अपनों के ख़िलाफ़ हो या ख़ुद के ख़िलाफ़। ■■

महिला सुरक्षा संदेशों की ग़लत व्याख्या



हाल ही में देश के एक प्रमुख राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक ने महिलाओं की सुरक्षा से जुड़े एक संवेदनशील और बहसतलब मसले पर ध्यान खींचते हुए एक प्रभावशाली संपादकीय प्रकाशित किया। इसमें तीखे शब्दों में महिलाओं की सुरक्षा को लेकर सरकारों और संबंधित संस्थानों को कटघरे में खड़ा किया गया था।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस चर्चा का केंद्र गुजरात के अहमदाबाद में चलाया गया एक सुरक्षा जागरूकता अभियान बना, जिसमें यातायात पुलिस द्वारा सार्वजनिक स्थानों पर कुछ पोस्टर लगाए गए थे। इन पोस्टरों में महिलाओं को यह सलाह दी गई थी कि वे 'देर रात पार्टी में न जाएं' या 'अंधेरे और सुनसान स्थानों पर अपने दोस्त के साथ अकेले न रहें'। इस संदेश को लेकर भारी विवाद खड़ा हुआ। संपादकीय में यह चिंता ज़ाहिर की गई कि इस तरह की चेतावनियां महिलाओं के अधिकारों को सीमित करने वाली नहीं तो कम से कम उन्हें अपराध के लिए परोक्ष रूप से ज़िम्मेदार ठहराने वाली ज़रूर प्रतीत होती हैं।

पोस्टर लगाने के लिए ज़िम्मेदार यातायात पुलिस और संबंधित संगठन को संवेदनहीन, नासमझ या फिर एक आपराधिक मानसिकता का बचाव

विचारणीय



सुफ़ियान अहमद

करने वाला बताया गया। लेख में महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाले जघन्य अपराधों के प्रति इस सोच को बेहद जड़, संकीर्ण और प्रतिगामी क़रार देने के साथ-साथ इस दृष्टिकोण पर अफ़सोस भी जताया गया।

महिलाओं की सुरक्षा के सवाल पर बहस जितनी ज़रूरी है, उतनी ही ज़रूरी है उन प्रयासों की निष्पक्ष समझ और आलोचनात्मक विवेक के साथ व्याख्या जो इस दिशा में किए जा रहे हैं। अहमदाबाद में यातायात पुलिस और एक कथित ग़ैर-सरकारी संगठन द्वारा लगाए गए पोस्टरों को लेकर जो विवाद खड़ा हुआ, वह कहीं न कहीं हमारे सामाजिक विमर्श की उस विडंबना को उजागर करता है जहां संवेदनशीलता और ज़िम्मेदारी के नाम पर उठाए गए कुछ ज़रूरी एहतियात भी संकीर्णता और अपराध के समर्थन की श्रेणी में रख दिए जाते हैं।

दरअस्ल, जिन पोस्टरों को लेकर सवाल उठाए गए, उनका मूल उद्देश्य महिलाओं को दोषी ठहराना नहीं, बल्कि उन्हें संभावित ख़तरों के प्रति सतर्क करना था। अगर किसी पोस्टर में यह कहा गया कि "देर रात पार्टी में न जाएं" या "सुनसान जगहों पर अपने दोस्त के साथ अकेले न रहें", तो इसका सीधा-सीधा आशय न तो यह है कि यदि कोई महिला ऐसा करती है तो वह अपराध की ज़िम्मेदार है, और न ही यह कि अपराधियों को इससे कोई वैधता मिल जाती है। यह मात्र एक सावधानी भर है, जैसे हम कहते हैं कि "सड़क पार करते वक़्त दोनों तरफ़ देखना चाहिए" ''यात्री अपने सामान की सुरक्षा स्वयं करें'' या "अनजान व्यक्ति से बात न करें"।

समस्या तब खड़ी होती है जब हर चेतावनी को पीड़िता को दोष देना (victim blaming) के चश्मे से देखा जाने लगे। सामाजिक विज्ञान का यह सिद्धांत है कि किसी भी सामाजिक समस्या के समाधान के लिए बहुपक्षीय दृष्टिकोण आवश्यक होता है। अपराध की रोकथाम केवल दंडात्मक व्यवस्था से नहीं, बल्कि सामाजिक जागरूकता, व्यक्तिगत सावधानी और सामूहिक सहयोग से होती है।



सावधानी को संकीर्णता नहीं कहा जा सकता

ऐसे संदेशों को संकीर्ण और जड़ मानसिकता का उत्पाद कह देना अपने आप में अतिरेकपूर्ण है। यह समझना ज़रूरी है कि महिलाओं की सुरक्षा केवल क़ानूनी सज़ाओं से ही नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और व्यक्तिगत सतर्कता से भी सुनिश्चित होती है। जिस प्रकार से भारत सहित विश्व भर में साइबर सुरक्षा को लेकर युवाओं को यह सिखाया जाता है कि "अपने पासवर्ड किसी से साझा न करें" या "फिशिंग लिंक से बचें", क्या उसी तर्ज पर महिला सुरक्षा के लिए कुछ व्यावहारिक सुझाव देना एक आपराधिक सोच है?

संदेशों का उद्देश्य भय नहीं, सतर्कता है

महिलाओं को देर रात अकेले बाहर जाने से मना करने का अर्थ उन्हें उनके अधिकारों से वंचित करना नहीं है। यह एक यथार्थपरक सलाह है, जिसमें न तो कोई क़ानूनी पाबंदी है और न ही कोई सामाजिक आलोचना। भारत जैसे देश में, जहां कई क्षेत्रों में अभी भी समुचित स्ट्रीट लाइटिंग, सार्वजनिक सुरक्षा गश्त और भरोसेमंद परिवहन की व्यवस्था नहीं है, वहां महिलाओं को असुरक्षित क्षेत्रों के प्रति आगाह करना एक ज़िम्मेदार कार्य है।

क्या यह अपराधियों का बचाव है?

लेख में यह आरोप लगाया गया है कि इस तरह की चेतावनियां "आपराधिक मानसिकता का बचाव" है। यह एक गंभीर आरोप है, जिसे तथ्यों की कसौटी पर कसना ज़रूरी है। क्या महिलाओं को सतर्क रहने की सलाह देना वास्तव में अपराधियों को संरक्षण देना है? नहीं। यदि कोई डॉक्टर कहे कि "मच्छरों से बचाव के लिए शरीर को ढक कर रखें", तो इसका यह अर्थ नहीं

लगाया जा सकता कि वह सरकार को मच्छर नियंत्रण के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरा रहा। इसी प्रकार, किसी संगठन का महिलाओं को व्यावहारिक सुरक्षा के बारे में आगाह करना उस संस्था की ज़िम्मेदारी और संवेदनशीलता को ही दर्शाता है, न कि अपराधियों के प्रति सहानुभूति को।

प्रत्येक सुरक्षा प्रयास का स्वागत होना चाहिए, निंदा नहीं

समस्या तब खड़ी होती है जब हर चेतावनी को पीड़िता को दोष देना (victim blaming) के चश्मे से देखा जाने लगे। सामाजिक विज्ञान का यह सिद्धांत है कि किसी भी सामाजिक समस्या के समाधान के लिए बहुपक्षीय दृष्टिकोण आवश्यक होता है। अपराध की रोकथाम केवल दंडात्मक व्यवस्था से नहीं, बल्कि सामाजिक जागरूकता, व्यक्तिगत सावधानी और सामूहिक सहयोग से होती है।

पोस्टरों में जो बातें लिखी गईं, वे नैतिक उपदेश नहीं थीं, बल्कि व्यावहारिक चेतावनियां थीं। यह कहना कि महिलाओं को देर रात अंधेरे इलाक़ों में नहीं जाना चाहिए, वैसा ही है जैसे किसी पर्वतारोही को यह कहना कि बर्फ़बारी के दौरान चढ़ाई टालें। क्या यह पर्वतारोही की क्षमताओं का अपमान है? नहीं। यह एक ज़िम्मेदार सलाह है।

यदि पोस्टर यातायात पुलिस या किसी ग़ैर-सरकारी संगठन द्वारा लगाए गए थे, तो यह ज़रूरी था कि उनके इरादों और उद्देश्य को जांचा जाए, न कि केवल सतही भाषा के आधार पर उन्हें कटघरे में खड़ा कर दिया जाए।

आज आवश्यकता इस बात की है कि महिला सुरक्षा पर विमर्श करते समय हम अधिकारों और ज़िम्मेदारियों के बीच संतुलन बनाएं। एक ओर हमें यह सुनिश्चित करना है कि किसी भी रूप में पीड़िता को अपराध के लिए ज़िम्मेदार न ठहराया जाए, तो दूसरी ओर यह भी ज़रूरी है कि उन्हें व्यावहारिक जीवन की चुनौतियों और संभावित ख़तरों से भी सावधान किया जाए।



आज आवश्यकता इस बात की है कि महिला सुरक्षा पर विमर्श करते समय हम अधिकारों और ज़िम्मेदारियों के बीच संतुलन बनाएं। एक ओर हमें यह सुनिश्चित करना है कि किसी भी रूप में पीड़िता को अपराध के लिए ज़िम्मेदार न ठहराया जाए, तो दूसरी ओर यह भी ज़रूरी है कि उन्हें व्यावहारिक जीवन की चुनौतियों और संभावित ख़तरों से भी सावधान किया जाए।

यदि कोई संस्था यह कार्य कर रही है, तो उसे संकीर्णता का प्रतीक बताना न केवल अनुचित है, बल्कि यह महिलाओं की सुरक्षा के लिए किए जा रहे व्यापक प्रयासों को भी कमज़ोर करता है।

वास्तविकता यह है कि सुरक्षा केवल नारे और वादों से नहीं आती, बल्कि समझदारी, जागरूकता और सहयोग से आती है। यह काम यदि कोई संगठन कर रहा है, तो ऐसे प्रयासों को सामाजिक सहयोग के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए, शक की निगाह से नहीं देखा जाना चाहिए। ■■

डीयू : पाठ्यक्रम में पूर्वाग्रहों को शामिल करने की साज़िश



इतिहास का सच और सच का इतिहास



डॉ. अभय कुमार

हाल ही में दिल्ली विश्वविद्यालय ने स्नातक स्तर पर पढ़ाई कर रहे छात्रों के लिए एक अत्यंत विवादास्पद पाठ्यक्रम पेश किया है, जो धार्मिक खाई को पाटने के बजाय उसे और गहरा कर सकता है। विश्वविद्यालय प्रशासन का तर्क है कि भारत के मध्यकालीन इतिहास में मुगलों के हाथों सिखों के उत्पीड़न और सिख समुदाय की कुर्बानियों को याद रखना ज़रूरी है, ताकि नई पीढ़ियों को इस इतिहास से अवगत कराया जा सके।

इसी उद्देश्य के तहत एक वैकल्पिक पाठ्यक्रम को गत 5 जुलाई को आयोजित अकादमिक काउंसिल की बैठक में मंजूरी दी गई, जिसे विश्वविद्यालय के सेंटर फॉर इंडिपेंडेंस एंड पार्टीशन स्टडीज़ ने प्रस्तुत किया था।

विश्वविद्यालय की दक्षिणपंथी लॉबी ने इस पाठ्यक्रम का समर्थन करते हुए इसकी उपयोगिता पर ज़ोर दिया है। वहीं दूसरी ओर निष्पक्ष इतिहासकारों, धर्मनिरपेक्ष विचारधारा रखने वाले छात्रों और बुद्धिजीवियों का मानना है कि इस पाठ्यक्रम की आड़ में सिख गुरुओं और मुगलों के बीच समय-समय पर हुई ऐतिहासिक राजनीतिक असहमतियों को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे सिख समुदाय और इस्लामी समाज के बीच मौजूद साझी सांस्कृतिक विरासत की अनदेखी होती है, और उसे एक सांप्रदायिक रंग देने की कोशिश की जा रही है।

उदाहरण के लिए, प्रख्यात इतिहासकार प्रोफेसर सतीश चंद्र ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ मिडीवल इंडिया' (ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2019) में लिखा है कि मुग़ल शासक औरंगज़ेब, सिखों के बढ़ते प्रभाव से भली-भांति परिचित था और इसी कारण उसने गुरु हरराय के बड़े पुत्र रामराय के साथ नज़दीकियां बढ़ाने की कोशिश की। लेकिन गुरु हरराय अपने पुत्र रामराय से संतुष्ट नहीं थे और उन्होंने अपने छोटे पुत्र हरकिशन जी को उत्तराधिकारी नियुक्त किया। हरकिशन जी की मृत्यु के बाद, 1664 में गुरु तेग़ बहादुर ने गद्दी संभाली। इस समय राम राय ने भी गद्दी पर दावा ठोक दिया। हालांकि औरंगज़ेब ने इन मामलों में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं किया, लेकिन उसने रामराय को देहरादून में एक गुरुद्वारा स्थापित करने के लिए

भूमि प्रदान की।

रामराय की कोशिश यही थी कि वह मुग़ल दरबार को अपने प्रतिद्वंदी गुरु तेग़ बहादुर के खिलाफ उकसाए। इसी दौरान गुरु तेग़ बहादुर को गिरफ़्तार करने की कोशिश हुई, मगर वे उस समय गिरफ्तारी से बचने में सफल रहे। अंततः 1675 में उन्हें उनके पांच अनुयायियों सहित दिल्ली लाया गया। उन पर कई आरोप लगाए गए और उन पर अपना धर्म त्यागने का दबाव डाला गया, जिसे उन्होंने दृढ़ता से अस्वीकार कर दिया। इसके बाद उनका सिर धड़ से अलग कर दिया गया।

गुरु तेग़ बहादुर की हत्या के पीछे क्या कारण थे, इस पर विभिन्न मत हैं। परंतु यह स्पष्ट है कि इस हत्या के पीछे धार्मिक से अधिक सामाजिक और आर्थिक कारण काम कर रहे थे। फ़ारसी स्रोतों के आधार पर संकेत मिलता है कि उस समय गरीब किसान, जो मुग़ल साम्राज्य के लिए काम कर रहे जागीरदारों और ज़मींदारों के शोषण से परेशान थे, न्याय और राहत की तलाश में सिख गुरु के पास जा रहे थे। गुरु की शिक्षाएं शोषण के विरुद्ध मानवता, समानता और न्याय की बात करती थीं और पीड़ितों को अत्याचार से मुक्ति की राह दिखलाती थीं। यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि औरंगज़ेब द्वारा गुरु तेग़ बहादुर पर किया गया अत्याचार पूरी तरह निंदनीय है।

गुरु तेग़ बहादुर की शहादत के बाद, सिख समुदाय पंजाब के दूर-दराज़ के पहाड़ी क्षेत्रों में चला गया। इसी दौर में गुरु गोबिंद सिंह ने सिखों को सैन्य रूप से संगठित किया। वे एक सक्षम योद्धा और कुशल प्रशासक थे। 1699 में उन्होंने 'खालसा' की स्थापना की, जो सिखों के लिए एक सैन्य-सामुदायिक पहचान बन गई। हालांकि, समय के साथ सिखों और पहाड़ी राजाओं के बीच संबंधों में तनाव आने लगा। 1704 में इन राजाओं ने आनंदपुर साहिब पर हमला किया, लेकिन सिखों ने उन्हें परास्त कर दिया। इसका बदला लेने के लिए पहाड़ी राजाओं ने मुग़ल शासकों से सैन्य मदद मांगी।

विश्वविद्यालय की दक्षिणपंथी लॉबी ने इस पाठ्यक्रम का समर्थन करते हुए इसकी उपयोगिता पर ज़ोर दिया है। वहीं दूसरी ओर निष्पक्ष इतिहासकारों, धर्मनिरपेक्ष विचारधारा रखने वाले छात्रों और बुद्धिजीवियों का मानना है कि इस पाठ्यक्रम की आड़ में सिख गुरुओं और मुगलों के बीच समय-समय पर हुई ऐतिहासिक राजनीतिक असहमतियों को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे सिख समुदाय और इस्लामी समाज के बीच मौजूद साझी सांस्कृतिक विरासत की अनदेखी होती है, और उसे एक सांप्रदायिक रंग देने की कोशिश की जा रही है।

इस पूरे कालखंड को प्रोफेसर सतीश चंद्र ने इन शब्दों में संक्षेपित किया है–

"जो संघर्ष उसके बाद हुआ, वह मुख्य रूप से धार्मिक संघर्ष नहीं था। यह आंशिक रूप से हिंदू पहाड़ी राजाओं और सिखों के बीच स्थानीय प्रतिद्वंद्विता की उपज था, और आंशिक रूप से उस सिख आंदोलन का परिणाम था जैसा कि वह विकसित हुआ था।" (पृष्ठ 349)

इसके बरक्स दिल्ली विश्वविद्यालय में जो कुछ भी हो रहा है, वह देश की वर्तमान राजनीति से कटा हुआ नहीं है। विभिन्न मोर्चों पर दक्षिणपंथी राजनीतिक दल इतिहास के भगवाकरण में सक्रिय रूप से लगे हुए हैं। एक ओर जहां स्कूली पाठ्यपुस्तकों में बदलाव किया जा रहा है, वहीं दूसरी ओर कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में ऐसे पाठ्यक्रम प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिनका उद्देश्य एक विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को सब पर थोपना प्रतीत होता है। इस दिशा में विश्वविद्यालयों की भूमिका भी तेज़ी से बदली जा रही है। मसलन, प्रोफेसर पद के लिए उम्मीदवारों की शैक्षणिक योग्यता की

अनदेखी करते हुए ऐसे व्यक्तियों को अध्यापन की ज़िम्मेदारी दी जा रही है, जिनकी रुचि अध्ययन और अनुसंधान में नहीं, बल्कि एक विशेष विचारधारा और राजनीतिक दल का झंडा आंख मूंदकर उठाने में है।

पंजाब के टांडा-होशियारपुर स्थित निर्मल डेरा में संरक्षित एक पेंटिंग, जिसमें सिक्ख धर्म के दसों गुरुओं को चित्रित किया गया है

एक लोकतांत्रिक देश में राजनीतिक चेतना रखना निस्संदेह सराहनीय है, और हर नागरिक को किसी भी राजनीतिक दल का समर्थन करने का अधिकार है। लेकिन जब राजनीतिक स्वार्थों को ध्यान में रखते हुए शैक्षणिक संस्थानों में शिक्षकों की नियुक्ति की जाए और इतिहास के तथ्यों से छेड़छाड़ की जाए, तो यह समाज को तनाव और विघटन की आग में धकेल सकता है।

सत्ता में बैठे हिंदुत्व विचारधारा से प्रेरित समूहों की यह भी पूरी कोशिश है कि इतिहास के उन पहलुओं को उभारकर प्रस्तुत किया जाए, जहां धार्मिक मतभेद मुखर रूप से दिखाई देते हैं। लेकिन एक ईमानदार इतिहासकार कभी यह दावा नहीं कर सकता कि अतीत पूर्णतः निष्कलंक था या तत्कालीन समय में दूध और शहद की नदियां बहती थीं। सच्चाई यह है कि समाज और समुदायों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए राजनीतिक संघर्ष हमेशा चलते रहे हैं और विभिन्न धर्मों के शासकों के बीच रक्तपात भी हुआ है।

लेकिन इससे भी बड़ी सच्चाई यह है कि आम जनता ने कभी शासकों की धार्मिक पहचान के आधार पर आपसी संबंधों को कलुषित नहीं किया। जनता जानती थी कि शासक चाहे किसी भी धर्म का हो, टैक्स वसूली में कोई रियायत नहीं मिलने वाली। यही वजह थी कि एक हिंदू राजा के शासन में हिंदू किसान उतना ही शोषण झेलता था, जितना किसी मुस्लिम शासक के समय में मुस्लिम किसान।

उसी प्रकार, हिंदू राजाओं के दरबारों में मुस्लिम दरबारी होते थे और मुस्लिम बादशाहों के दरबारों में अनेक हिंदू अधिकारी व मंत्री कार्यरत थे। लेकिन दक्षिणपंथी सांप्रदायिक सोच ने इन ऐतिहासिक राजनीतिक खींचतान को हिंदू बनाम मुसलमान या सिख बनाम मुसलमान के बीच युद्ध के रूप में पेश करने की कोशिश की है।

दक्षिणपंथी शक्तियों की संकीर्ण मानसिकता का आलम यह है कि हिंदू राजाओं के कालखंड में उन्हें न तो अत्याचार दिखता है, न जात-पात, न भेदभाव और न ही वर्ग संघर्ष; लेकिन मुस्लिम शासनकाल को वे खुले तौर पर गैर-मुसलमानों के लिए "अत्याचार" का युग सिद्ध करने में कोई संकोच नहीं करते।

निस्संदेह, सिखों और मुगलों के बीच कई बार युद्ध हुए, लेकिन उन ऐतिहासिक साक्ष्यों की अक्सर अनदेखी कर दी जाती है, जहां मुस्लिम शासकों और सिख नेताओं के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध भी स्थापित थे। यह बात दक्षिणपंथी ताक़तें याद नहीं रखना चाहतीं कि इस्लाम और सिख धर्म के बीच केवल कुछ सिद्धांतों में ही समानता नहीं है, बल्कि गुरु नानक की शिक्षाओं पर इस्लामी प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

यह कौन नकार सकता है कि सिख और मुस्लिम संस्कृतियों ने एक-दूसरे को प्रभावित किया है, और उनके बीच मतभेदों की तुलना में समानताएं कहीं अधिक रही हैं। दोनों ही धर्म समानता में विश्वास रखते हैं और जात-पात या किसी अन्य सामाजिक भेदभाव को अस्वीकार करते हैं। सूफ़ी संत और सिख गुरुओं दोनों की शिक्षाएं मानवता, भाईचारे और सहिष्णुता पर केंद्रित हैं, और उनकी मूलभूत विचारधाराओं में गहन समानता पाई जाती है।

लेकिन दक्षिणपंथी ताक़तों का मुख्य उद्देश्य समाज में दरार पैदा करना है। धार्मिक दूरियां बढ़ाकर राजनीतिक लाभ अर्जित करना। यही कारण है कि कहीं वे मुसलमान बनाम सिख की राजनीति खेलते हैं, तो कहीं दलित बनाम मुसलमान की खाई खोदने की कोशिश करते हैं। आदिवासी क्षेत्रों में मुसलमानों को 'दुश्मन' के रूप में चित्रित किया जा रहा है, और अतीत में आदिवासी सरदारों तथा मुस्लिम शासकों के बीच हुई कुछ मामूली झड़पों को बढ़ा-चढ़ाकर, राई का पहाड़ बना कर पेश किया जा रहा है।

पिछले साल झारखंड में चुनावों के दौरान यह दुष्प्रचार बड़े ज़ोर-शोर से फैलाया गया कि बांग्लादेशी घुसपैठिए आदिवासी महिलाओं से शादी के बहाने उनकी ज़मीनों पर कब्ज़ा कर रहे हैं और पूरे क्षेत्र की जनसंख्या संरचना को बदलने का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन जब चुनाव परिणाम सामने आए, तो आदिवासियों ने बड़ी राजनीतिक परिपक्वता का

परिचय दिया और यह स्पष्ट कर दिया कि मुसलमानों और आदिवासियों के बीच सदियों पुराना सामाजिक रिश्ता तात्कालिक राजनीतिक स्वार्थों की भेंट नहीं चढ़ सकता।

ठीक यही रणनीति दलितों के साथ भी अपनाई जा रही है। दलित नायकों और योद्धाओं को मुस्लिम शासकों के विरोध में खड़ा करने की कोशिश की जा रही है, ताकि दोनों वर्गों के बीच आपसी संबंधों में विष घोला जा सके।

क्षेत्रीय इतिहास को महत्व देने के नाम पर गैर-मुस्लिम क्षेत्रीय राजाओं को मुस्लिम शासकों, विशेषकर मुगलों, के विरोध में प्रस्तुत किया जा रहा है। सरकार जानबूझकर ऐसे सेमिनारों और पुस्तकों के प्रकाशन को प्रोत्साहित कर रही है जो मुस्लिम शासकों – खासकर मुगल बादशाहों – को एकतरफा, क्रूर और नकारात्मक रूप में चित्रित करते हैं। असम में अहोम राजाओं और मुस्लिम शासकों के बीच हुई ऐतिहासिक असहमति को भी बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जा रहा है।

सत्ता पर काबिज दक्षिणपंथी लॉबी यह समझने में विफल रही है कि देश की एकता में सामाजिक सौहार्द की बुनियादी और निर्णायक भूमिका होती है। एक सशक्त लोकतंत्र की नींव इसी पर टिकी होती है कि नई पीढ़ियों को इतिहास के बारे में सही, संतुलित और निष्पक्ष जानकारी दी जाए। इतिहासलेखन की सही प्रक्रिया यही है कि किसी युग की राजनीतिक परिस्थितियों के विश्लेषण में सामाजिक और आर्थिक पहलुओं को भी समान महत्व दिया जाए।

हिंदू राजाओं और बादशाहों के बीच हुए सत्ता संघर्ष को सही संदर्भ में समझने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी नीतियों का निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन किया जाए – ना कि केवल उनकी धार्मिक पहचान के आधार पर उनके ऐतिहासिक चरित्र का निर्धारण किया जाए। शासकों को उनके धर्म के आधार पर परखना एक प्रकार का सांप्रदायिक इतिहास-लेखन है, जो शोध और विवेकपूर्ण विश्लेषण के बुनियादी सिद्धांतों से भटका हुआ है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के हालिया प्रस्तावित पाठ्यक्रम को देखकर यह आभास होता है कि उसमें सिखों और मुस्लिम शासकों के बीच हुई कुछ राजनीतिक असहमतियों को ही सिख इतिहास का केंद्रीय संदर्भ बनाकर प्रस्तुत किया जा रहा हैं। यह न केवल बौद्धिक दृष्टि से संकीर्ण सोच का परिचायक है और इतिहास की तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुति हैं, बल्कि यह देश के सामाजिक सद्भाव और राष्ट्रीय एकता के लिए भी प्रतिकूल सिद्ध हो सकता हैं।

सिख समुदाय के इतिहास को शैक्षणिक पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना निश्चित रूप से एक स्वागत-योग्य कदम है। लेकिन इसके लिए यह जरूरी है कि पाठ्यक्रम को व्यापक परिप्रेक्ष्य में तैयार किया जाए, जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पहलुओं को समान महत्व दिया जाए। सिख धर्म और समुदाय ने अपने ऐतिहासिक संघर्षों में जातिवाद के विरुद्ध आवाज़ उठाई है और समानता, बराबरी तथा तार्किकता के मूल्यों की पैरवी की है। इन पहलुओं पर ज़ोर देने से भारत में लोकतंत्र और सामाजिक न्याय की लड़ाई को और मजबूती मिलेगी।

लेकिन दिल्ली विश्वविद्यालय के हालिया प्रस्तावित पाठ्यक्रम को देखकर यह आभास होता है कि उसमें सिखों और मुस्लिम शासकों के बीच हुई कुछ राजनीतिक असहमतियों को ही सिख इतिहास का केंद्रीय संदर्भ बनाकर प्रस्तुत किया जा रहा है। यह न केवल बौद्धिक दृष्टि से संकीर्ण सोच का परिचायक है और इतिहास की तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुति है, बल्कि यह देश के सामाजिक सद्भाव और राष्ट्रीय एकता के लिए भी प्रतिकूल सिद्ध हो सकता है। ■■

मानसिक स्वास्थ्य का नया परिदृश्य

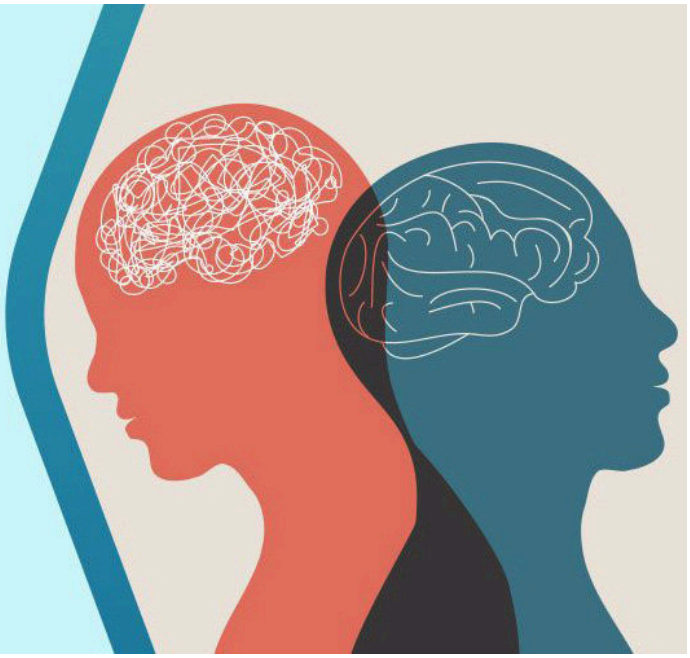

स्वस्थ रहना मनुष्य की मूल और स्वाभाविक अवस्था होनी चाहिए, लेकिन आज के दौर में यह बात मानो किसी आदर्श की तरह लगती है। हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी, सामाजिक रिश्ते, पेशेवर जीवन और तकनीकी दबावों ने स्वास्थ्य को जटिल बना दिया है। ख़ासकर मानसिक स्वास्थ्य को, जिसकी चर्चा आमतौर पर ज़्यादा नहीं होती।

भारत समेत पूरी दुनिया में शारीरिक रोगों के लिए इलाज और जांच की सुविधाएं बड़ी हद तक सुलभ हैं, लेकिन मानसिक रोग अब भी उपेक्षा के शिकार हैं। इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि समाज में मानसिक रोगों को लेकर जागरूकता बेहद कम है और इसके बारे में बोलना भी लोग 'कलंक' मानते हैं।

विशेषज्ञ लगातार चेतावनी दे रहे हैं कि मानसिक स्वास्थ्य को अनदेखा करने की क़ीमत हमें शारीरिक बीमारियों से कहीं ज़्यादा चुकानी पड़ सकती है। दरअस्ल, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। यदि मन अस्वस्थ है, तो शरीर भी देर-सबेर इसकी प्रतिक्रिया ज़रूर दिखाता है।

सेहत



मिरात अहमद

मानसिक स्वास्थ्य की बुनियादी तस्वीर

चिकित्सा शिक्षा में मानसिक रोगों को 'साइकियाट्री' के अंतर्गत पढ़ाया जाता है। इससे जुड़े कई महत्वपूर्ण क्षेत्र, जैसे क्लिनिकल साइकोलॉजी और काउंसलिंग, मनोविज्ञान के अंतर्गत आते हैं। भारत में क्लिनिकल साइकोलॉजी का उच्च स्तरीय प्रशिक्षण कुछ चुनिंदा संस्थानों में ही उपलब्ध है। इसके लिए एमए के बाद एमफिल की पेशेवर डिग्री को मान्यता दी गई थी, जिसके अंतर्गत विद्यार्थियों को गहन व्यावहारिक और सैद्धांतिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

एमफिल की यह डिग्री मानसिक रोगों की पहचान, थेरेपी और उपचार में प्रशिक्षित प्रोफेशनल तैयार करने का एक सशक्त माध्यम रही है। लेकिन नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) में एमफिल को समाप्त करने का निर्णय लिया गया है। इससे क्लिनिकल साइकोलॉजी समेत कई विषयों में एमफिल ख़त्म हो जाएगा।

विशेषज्ञ मानते हैं कि अन्य विषयों के मुक़ाबले मानसिक स्वास्थ्य का परिदृश्य बिल्कुल अलग है।

यहां प्रशिक्षित और अनुभवी मानव संसाधन पहले ही बेहद कम हैं, ऐसे में एमफिल बंद करने से स्थिति और गंभीर हो सकती है।

मानसिक रोगियों की बढ़ती संख्या और प्रशिक्षण की सीमित व्यवस्थाओं के बीच यह फ़ैसला एक बड़ा झटका बन सकता है। अगर एमफिल जैसी व्यावसायिक डिग्रियों को बिना विकल्प के हटाया गया, तो मानसिक रोगों की व्यापक चुनौती से निपटना मुश्किल होगा।

चिंताजनक आंकड़े

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट बताती है कि एंग्जायटी, डिप्रेशन, बाईपोलर डिसऑर्डर, स्किज़ोफ्रेनिया जैसे मनोरोगों से दुनिया की एक बड़ी आबादी ग्रस्त है, और यह संख्या लगातार बढ़ रही है।

भारत में 2017 में हुए एक सर्वेक्षण में हर सात में से एक व्यक्ति मानसिक रोग से ग्रस्त पाया गया। 1999 के बाद से आत्महत्या के मामलों में 30 प्रतिशत तक वृद्धि दर्ज की गई। अनिद्रा (इंसोम्निया) भी तेज़ी से फैल रही है, और एक-तिहाई प्रौढ़ इसकी चपेट में हैं।

सिर्फ़ उत्तरी अमेरिका में 2022 में अवसाद (डिप्रेशन) के इलाज पर 326 अरब डॉलर ख़र्च हुए। 2010 में यह आंकड़ा 210.5 अरब डॉलर था। विश्व स्वास्थ्य विशेषज्ञों का अनुमान है कि इस दशक के आख़िर तक मानसिक रोगों पर वैश्विक स्तर पर 16 लाख करोड़ डॉलर से अधिक का ख़र्च आ सकता है।

यह किसी महामारी जैसी स्थिति का आभास देता है। अल्ज़ाइमर और डिमेंशिया जैसे रोग तेज़ी से फैल रहे हैं, जिनके इलाज की सुविधाएं भी कई देशों में नाकाफ़ी हैं।

बदलती जीवनशैली और मानसिक संकट

आज का व्यक्ति दिखने में तो बहुत व्यस्त और सफल लगता है, लेकिन भीतर से लगातार टूट रहा है। इसके पीछे एक बड़ा कारण है हमारी बदली हुई जीवनशैली, जिसमें तकनीकी उपकरणों और बाज़ार ने सुख का नया मापदंड बना दिया है।

आज स्मार्टफ़ोन, इंटरनेट, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, सोशल मीडिया जैसी चीज़ों ने इंसानी जुड़ाव की जगह तुलना और दबाव को बढ़ाया है। किसके पास कौन-सा फ़ोन है, किसके पास कितने फॉलोअर्स हैं, यह बात आज 'हैसियत' का पैमाना बन चुकी है।

जो लोग इस होड़ में पिछड़ जाते हैं, उन्हें हीनता-बोध, अकेलापन और निराशा घेरने लगती है। इसके अलावा बेरोज़गारी, ग़रीबी, पारिवारिक उलझन और सामाजिक अन्याय भी मानसिक रोगों के बड़े कारण हैं।

बाज़ार और विज्ञापन उपभोग को ही सुख का पर्याय बना रहे हैं। व्यक्ति जितना उपभोग करता है, उतना ही खालीपन और बेचैनी महसूस कर रहा है। यह विषाक्त चक्र (vicious cycle) बन चुका है, जिसमें फंसकर लोग नशा, शराब, धूम्रपान और ड्रग्स का सहारा ले लेते हैं।

मानसिक रोगों की अनदेखी

आधुनिक चिकित्सा विज्ञानी मानते हैं कि शरीर और मन एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। जब मन दुखी होता है, तो शरीर में रोग पैदा होते हैं। और जब शरीर रोगी होता है, तो मन भी रुग्ण होने लगता है। डिप्रेशन, एंग्जायटी, स्किज़ोफ्रेनिया जैसे रोगों में कई बार मरीज़ों को शारीरिक लक्षण भी होते हैं—जैसे दिल की धड़कन तेज़ होना, भूख न लगना, सिरदर्द, अनिद्रा आदि।

इसलिए मानसिक रोग को 'काल्पनिक' मानना एक बड़ी भूल है। मानसिक रोग भी उतने ही वास्तविक हैं, जितना कोई हड्डी टूटना या बुख़ार आना। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि इसे समझने और इलाज करने के लिए ज़्यादा संवेदनशील और प्रशिक्षित दृष्टिकोण चाहिए।

समाधान की दिशा में क्या किया जाए?

1. एमफ़िल जैसी व्यावसायिक डिग्रियों को संरक्षित रखा जाए

मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं के लिए प्रशिक्षित पेशेवर तैयार करना प्राथमिकता होनी चाहिए। एमफिल को हटाना तभी उचित होगा जब इसके बराबर या बेहतर व्यवस्था सामने लाई जाए।

2. मानसिक स्वास्थ्य के लिए लोक-जागरण

गांव, क़स्बों, स्कूलों और मीडिया के माध्यम से मानसिक रोगों को लेकर जागरूकता बढ़ाई जाए। मानसिक बीमारी में शर्म या कलंक का भाव ख़त्म करने की कोशिश की जाए।

3. प्राथमिक स्वास्थ्य ढांचे में मानसिक रोग शामिल हों

जैसे गांव के PHC में मलेरिया और डेंगू की दवाएं होती हैं, उसी तरह सामान्य मानसिक रोगों की काउंसलिंग और दवा की सुविधा भी उपलब्ध

कराई जाए।

4. शिक्षा प्रणाली में मानसिक स्वास्थ्य को जगह मिले

स्कूल और कॉलेज के पाठ्यक्रम में मानसिक स्वास्थ्य, तनाव प्रबंधन, योग, ध्यान, नैतिक शिक्षा को शामिल किया जाए ताकि बचपन से ही लोग मानसिक दृढ़ता सीखें।

5. संतुलित जीवनशैली को बढ़ावा मिले

समुचित आहार, पर्याप्त नींद, नियमित व्यायाम और तकनीक का सीमित इस्तेमाल, ये चार स्तंभ मानसिक सेहत की रक्षा करते हैं।

क्या कहता है इस्लामी जीवनदर्शन?

इस्लामी शिक्षाएं मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य को गहराई से संबोधित करती हैं। क़ुरआन और हदीस में बार-बार ज़िक्र आता है कि मनुष्य का दिल (क़ल्ब) और मन (नफ़्स) स्वस्थ और संयमित होना चाहिए।

संतुलन (मीज़ान) इस्लामी जीवनदर्शन की एक केन्द्रीय अवधारणा है। क़ुरआन में आता है : "और हमने हर चीज़ में संतुलन रखा है, ताकि तुम संतुलन को न तोड़ो" (सूरह रहमान: 7-8)। यह संतुलन केवल क़ुदरत में ही नहीं, बल्कि मनुष्य के जीवन में भी आवश्यक है — खानपान, नींद, रिश्ते, काम और इबादत सबका संतुलित होना मानसिक सेहत की बुनियाद है।

तनाव से निपटने का आध्यात्मिक उपाय भी इस दर्शन में मिलता है। क़ुरआन कहता है : "सुन लो! अल्लाह के ज़िक्र में ही दिलों को सुकून मिलता है" (सूरह रअद : 28)। यह न सिर्फ़ इबादत के ज़रिए आत्मा को सुकून देने की बात है, बल्कि यह याद दिलाता है कि मानसिक अशांति को केवल भौतिक उपायों से नहीं, आध्यात्मिक जुड़ाव से भी दूर किया जा सकता है।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) की सीरत में मानसिक सेहत के प्रति संवेदनशीलता दिखाई देती है—उन्होंने समुदाय को ऐसा वातावरण बनाने का निर्देश दिया जहां कोई अकेला महसूस न करे।

उम्मत की ज़िम्मेदारी भी स्पष्ट है—"तुम में से हर एक ज़िम्मेदार है, और हर एक से उसकी ज़िम्मेदारी के बारे में पूछा जाएगा" (हदीस)।

इसका अर्थ यह भी है कि यदि कोई मानसिक संकट में है, तो समाज और परिवार की ज़िम्मेदारी बनती है कि वह उसके लिए सहारा बने, उसे उपेक्षित न छोड़े।

इस्लामी जीवनदर्शन बताता है कि मानव मन (नफ़्स) एक संघर्ष का मैदान है—इसे अनुशासित करने, समझने और संतुलन में रखने की प्रक्रिया ही मानसिक स्वास्थ्य की वास्तविक प्रक्रिया है। इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि हम नफ़्स की बीमारी को भी उतना ही गंभीर मानें, जितना जिस्म की बीमारी को।

कहां हैं चुनौतियां?

- सुविधाओं की कमी
- कम प्रशिक्षित पेशेवर
- मानसिक रोगों को कलंक मानना
- सरकारी बजट में मानसिक स्वास्थ्य की न्यून हिस्सेदारी

ये सभी चुनौतियां हमारे सामने हैं, जिनका समाधान प्राथमिकता के आधार पर खोजना होगा।

आगे की राह

मानसिक रोगों का इलाज सिर्फ़ दवा या थेरेपी नहीं, बल्कि पूरे समाज के दृष्टिकोण में बदलाव से संभव है। अगर हर नागरिक यह समझ ले कि मानसिक स्वास्थ्य, शारीरिक स्वास्थ्य जितना ही ज़रूरी है, तो आधी समस्या अपने आप सुलझ जाएगी।

इसीलिए सरकार और समाज दोनों को मिलकर काम करना होगा। एमफिल जैसी डिग्रियों का भविष्य सोच-समझकर तय किया जाए। इसके बिना प्रशिक्षित क्लिनिकल साइकोलॉजिस्टों की फ़ौज तैयार नहीं हो सकेगी और मानसिक रोगियों की देखभाल में बड़ी कमी आ जाएगी। भारत जैसे विशाल देश में, जहां पहले से ही मनोचिकित्सकों और काउंसलर्स की कमी है, यह फ़ैसला जल्दबाज़ी में नहीं लिया जाना चाहिए।

सेहत का मतलब सिर्फ़ शारीरिक फिटनेस नहीं, बल्कि मानसिक संतुलन और आंतरिक शांति भी है। आज जब व्यक्ति तरह-तरह के उपभोग में सफलता खोजने लगा है, तो उसके भीतर अकेलापन, तनाव, चिंता, कुंठा और व्यसन बढ़ते जा रहे हैं।

वास्तव में, स्वस्थ रहने के लिए ज़रूरी है कि हम ख़ुद से संवाद करें, अपने परिवार और दोस्तों से जुड़ें, संतुलित जीवनशैली अपनाएं और ज़रूरत पड़ने पर मदद लेने में हिचकें नहीं। मानसिक स्वास्थ्य पर देशव्यापी जागरूकता बढ़ाने के साथ, उसके लिए संस्थागत और शैक्षिक ढांचे को भी मज़बूत किया जाए—तभी हम सचमुच स्वस्थ भारत का सपना पूरा कर पाएंगे। ■■

(लेखक चिकित्सा शिक्षा से जुड़े हैं)

AI युग में करियर की नई दिशा : स्किल-बेस्ड एजुकेशन



आज जब दुनिया कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), मशीन लर्निंग, डिजिटल मार्केटिंग और ऑटोमेशन की ओर तेज़ी से बढ़ रही है, तो पारंपरिक डिग्रियों की जगह कौशल आधारित शिक्षा (Skill-Based Education) ने ले ली है। भारत जैसे युवा-प्रधान देश में, जहां 60% से अधिक जनसंख्या 35 वर्ष से कम आयु की है, स्किल्स और वोकेशनल ट्रेनिंग युवाओं के लिए रोज़गार और आत्म-निर्भरता की कुंजी बन चुकी है।

स्किल-बेस्ड करियर की ज़रूरत क्यों?

AI युग में सिर्फ़ डिग्री होना काफ़ी नहीं है। आज कंपनियां उन युवाओं को प्राथमिकता देती हैं जो न केवल सैद्धांतिक ज्ञान रखते हैं,

करियर

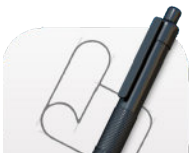

संपादन प्रभाग

बल्कि व्यावहारिक दक्षता (practical skills) में भी निपुण हों। डिजिटल परिवर्तन के इस दौर में "नौकरी देने वाली नहीं, नौकरी पैदा करने वाली शिक्षा" का विचार अब नारा नहीं, बल्कि ज़रूरत बन चुका है।

सरकारी और निजी संस्थाएं मिलकर अब विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स जैसे SWAYAM, Coursera, Udemy, NSDC, Google Digital Garage आदि के माध्यम से कम लागत या निशुल्क कोर्स उपलब्ध करा रही हैं।

इनमें युवाओं को डिजिटल मार्केटिंग, साइबर सिक्योरिटी, कोडिंग, डिजाइनिंग, एडिटिंग और लेखन जैसे कौशलों का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

1. साइबर सिक्योरिटी : डिजिटल युग का प्रहरी

जैसे-जैसे डिजिटल सेवाएं जीवन

का हिस्सा बन रही हैं, वैसे-वैसे साइबर हमलों का ख़तरा भी बढ़ रहा है। स्वास्थ्य सेवाओं से लेकर बैंकिंग तक, हर क्षेत्र अब साइबर सुरक्षा विशेषज्ञों की मांग कर रहा है।

क्या सीखें?

• नेटवर्क सिक्योरिटी
• एथिकल हैकिंग
• डेटा प्रोटेक्शन लॉ
• फिशिंग और मालवेयर से सुरक्षा
• एंडपॉइंट सिक्योरिटी

प्रमुख कोर्सेज :

• Coursera: Introduction to Cyber Security
• Udemy: Complete Cyber Security Course
• SWAYAM (NPTEL): साइबर लॉ एंड सिक्योरिटी

करियर विकल्प :

• साइबर सिक्योरिटी एनालिस्ट
• एथिकल हैकर
• डेटा प्रोटेक्शन कंसल्टेंट
• डिजिटल फॉरेंसिक एक्सपर्ट

2. डिजिटल मार्केटिंग : ऑनलाइन दुनिया का जादू

आज हर बिजनेस की उपस्थिति इंटरनेट पर है—स्टार्टअप हो या मल्टीनेशनल कंपनी। ऐसे में डिजिटल मार्केटिंग विशेषज्ञों की भारी मांग है जो ब्रांड को डिजिटल रूप से बढ़ा सकें।

क्या सीखें?

• SEO (Search Engine Optimization)
• SMM (Social Media Marketing)
• ईमेल मार्केटिंग
• Google Ads और Analytics
• कंटेंट मार्केटिंग



प्रमुख प्लेटफ़ॉर्म :

• Google Digital Garage (मुफ़्त)
• Meta Blueprint (फेसबुक/इंस्टाग्राम)
• Skill India Portal
• Udemy, Coursera

संभावित करियर :

• डिजिटल मार्केटिंग मैनेजर
• सोशल मीडिया स्ट्रैटजिस्ट
• कंटेंट क्रीएटर
• SEO एक्सपर्ट

3. UI/UX डिज़ाइनिंग : डिज़िटल अनुभव का सौंदर्यशास्त्र

वेबसाइट और मोबाइल ऐप का उपयोगकर्ता अनुभव (User Experience) और इंटरफ़ेस (User Interface) अब व्यवसाय की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

क्या सीखें?

• डिज़ाइन टूल : Adobe XD, Figma, Sketch
• वायरफ्रेमिंग और प्रोटोटाइप बनाना
• यूज़र रिसर्च
• फ्रंटएंड डिज़ाइनिंग की मूल बातें

प्रमुख कोर्सेज :

• Coursera: Google UX Design Certificate
• Udemy: UI/UX Bootcamp
• SWAYAM (NPTEL): UX Fundamentals

नौकरियों के विकल्प :

• UI Designer
• UX Researcher
• Product Designer
• App Interface Designer

(कोर्स की अवधि : 3–6 महीने |लागत : ₹ 500 – ₹ 5000)

4. कोडिंग : भविष्य की भाषा

AI और ऑटोमेशन के इस युग में कोडिंग एक मूलभूत कौशल बन चुका है। यह केवल तकनीकी पेशों के लिए नहीं, बल्कि हर क्षेत्र के लिए लाभदायक है।

प्रमुख भाषाएं :

• Python : AI, डेटा साइंस, मशीन लर्निंग
• JavaScript : वेब डेवलपमेंट
• C++ : सिस्टम प्रोग्रामिंग
• Java : ऐप डेवलपमेंट
• SQL : डाटाबेस मैनेजमेंट

सीखने के प्लेटफॉर्म :

• Codecademy, HackerRank,

freeCodeCamp
• Coursera, Udemy, SWAYAM
• Google for Developers, Microsoft Learn

संभावित करियर :

• सॉफ्टवेयर डेवलपर
• फुल स्टैक इंजीनियर
• AI/ML डेवलपर
• डेटा साइंटिस्ट

5. ग्राफिक डिज़ाइनिंग और वीडियो एडिटिंग : रचनात्मकता का कैनवस



OTT प्लेटफ़ॉर्म, यूट्यूब, इंस्टाग्राम और विज्ञापन उद्योग में क्रिएटिव डिज़ाइनर्स की भारी मांग है। यदि आपकी रुचि कला, एस्थेटिक्स, और मीडिया में है, तो यह क्षेत्र सुनहरा अवसर हो सकता है।

क्या सीखें?

• Photoshop, Illustrator, Premiere Pro
• Canva, Figma, After Effects
• मोशन ग्राफिक्स और एनीमेशन
• वीडियो ट्रांज़िशन और साउंड एडिटिंग

प्रमुख कोर्सेज :

• Udemy : Ultimate Adobe Mastery
• Coursera : Graphic Design Specialization
• Skill India & SWAYAM: बेसिक से एडवांस कोर्सेज

संभावित करियर :

• वीडियो एडिटर
• ग्राफ़िक डिज़ाइनर
• फ्रीलांस क्रिएटर
• विज्ञापन एजेंसी में क्रिएटिव हेड

6. Content Writing और Blogging : शब्दों की ताक़त

AI के दौर में मूल और गुणवत्तापूर्ण सामग्री (Original Content) की अहमियत और बढ़ गई है। वेबसाइट, ऐप, सोशल मीडिया — हर जगह कंटेंट की ज़रूरत है।

क्या सीखें?

• SEO फ्रेंडली लेखन
• ब्लॉगिंग और वेब कंटेंट
• टेक्निकल और क्रिएटिव राइटिंग
• प्रूफ़रीडिंग और एडिटिंग

कमाई के अवसर :

• Fiverr, Upwork, Freelancer जैसे प्लेटफॉर्म्स पर फ्रीलांसिंग
• डिजिटल एजेंसियों में कंटेंट राइटर
• ख़ुद का ब्लॉग या यूट्यूब चैनल

कौशल ही नई करेंसी है

"Skills are the new currency of the 21st century" – यह वाक्य अब केवल प्रेरक कथन नहीं, बल्कि आज की आर्थिक और सामाजिक सच्चाई बन गया है। भारत का युवा यदि समय रहते अपने अंदर कौशल विकसित कर ले, तो वह न केवल आत्म-निर्भर बन सकता है, बल्कि उद्यमिता की राह पर भी अग्रसर हो सकता है। डिग्री आपको नौकरी की शुरुआत दिला सकती है, लेकिन स्किल्स आपको भविष्य का मालिक बना सकती हैं।

अब समय है सीखने, निखारने और उड़ान भरने का। ये सभी कोर्स, टूल और प्लेटफ़ॉर्म आपके सामने हैं — अब बस आपको पहला क़दम उठाना है। ■■

आख़िरी पन्ना



सायेमा हुसैन

नैतिक प्रेरणा का सर्वोत्तम स्रोत

मानव सभ्यता के इतिहास में नैतिकता का प्रश्न हमेशा से केंद्रीय रहा है। क्या भलाई और बुराई केवल सामाजिक रिवाज हैं? क्या वे समय और परिस्थिति के अनुसार बदलती रहने वाली परिभाषाएं हैं? या फिर अच्छाई और बुराई के कुछ सार्वभौमिक सिद्धांत हैं, जिन्हें मनुष्य जन्मजात जानता है? इस्लाम का उत्तर इस प्रश्न पर अत्यंत स्पष्ट और गूढ़ है। उसके अनुसार नैतिकता कोई खोज का विषय नहीं, बल्कि मानव स्वभाव की अन्तःप्रेरणा (Intuition) में समाहित ज्ञान है। क़ुरआन की भाषा में भलाई को 'मारूफ़' (वह चीज़ जिसे मनुष्य जानता और पहचानता है) और बुराई को 'मुनकर' (वह चीज़ जिसे उसकी फ़ितरत अस्वीकार करती है) कहा गया है।

नैतिक ज्ञान की प्रकृति

इस्लामी दृष्टिकोण के अनुसार अच्छाई और बुराई के बोध का स्रोत स्वयं ईश्वर है जिसने यह ज्ञान मनुष्य की आत्मा में अंतःप्रेरणा के रूप में स्थापित कर दिया है :

"और उस आत्मा की, और उसे संवारने वाले की क़सम! उसने उसे उसकी बुराई और उसकी परहेज़गारी दोनों की समझ दे दी।"

(क़ुरआन, 91:7-8)

इस प्रकार, नैतिकता की अवधारणा सार्वभौमिक है, पर इसके व्यावहारिक क्रियान्वयन में विभिन्न सभ्यताओं, विचारधाराओं और धर्मों में भारी अंतर पाया जाता है। यह अंतर इस बात पर निर्भर करता है कि कोई व्यवस्था ब्रह्माण्ड, मनुष्य और जीवन के लक्ष्य के बारे में क्या दृष्टिकोण रखती है। जब जीवन का लक्ष्य, सृष्टि की व्याख्या और मनुष्य की भूमिका अलग-अलग ठहराई जाए तो परिणामस्वरूप नैतिकताओं की बुनियादें भी भिन्न हो जाती हैं।

इस्लाम कहता है कि नैतिकता कोई अनोखी चीज़ नहीं, वह मानव स्वभाव का अंग है। आवश्यकता केवल इसे पहचानने, उसे दिशा देने और उसके अनुसार जीवन जीने की है। यही इस्लाम का नैतिक योगदान है। स्थायित्व, संतुलन और संपूर्णता के साथ एक नैतिक समाज की स्थापना।

इस्लामी नैतिक व्यवस्था की बुनियाद

इस्लाम की नैतिक व्यवस्था की नींव उस अवधारणा पर है कि सृष्टि का एकमात्र स्वामी ईश्वर (अल्लाह) है। वह सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है। मनुष्य उसकी रचना है और उसकी भूमिका एक 'बन्दा' (दास) की है जिसे जीवन का हर पहलू ईश्वर की आज्ञा के अधीन चलाना है। नैतिकता केवल व्यवहार का मामला नहीं, बल्कि ईश्वर की प्रसन्नता अर्जित करने का माध्यम है। इस्लाम के अनुसार मनुष्य का उद्देश्य 'उबूदिय्यत' (ईश्वर की बन्दगी) है और इसी के लिए उसे जीवन की हर दिशा में नैतिक आचरण करना आवश्यक है।

इस्लाम यह नहीं मानता कि नैतिकता केवल बौद्धिक निर्णय या सामाजिक स्वीकृति का विषय है। वह इसे ईश्वरीय मार्गदर्शन से निर्देशित करता है, जिसके दो स्रोत हैं : क़ुरआन (ईश्वरीय ग्रंथ) और पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल.) का जीवन (सुन्नत)। ये दोनों स्रोत नैतिकता की स्थायी व्याख्या करते हैं, चाहे समय बदले, सभ्यताएं बदलें या मानव ज्ञान में कितनी ही वृद्धि क्यों न हो।

स्थायित्व और सार्वभौमिकता

इस्लाम की नैतिकता की पहली विशेषता उसका स्थायित्व है। जहां आधुनिक विचारधाराएं नैतिकता को परिस्थितिजन्य और सापेक्ष मानती हैं, वहीं इस्लाम नैतिक सिद्धांतों को अपरिवर्तनीय मूल्य के रूप में प्रस्तुत करता है। जैसे : ईमानदारी, न्याय, करुणा, सच्चाई, संयम—ये सभी गुण इस्लामी व्यवस्था में सदा के लिए भले माने गए हैं और इनके विपरीत झूठ, धोखा, अन्याय, स्वार्थ और क्रूरता को

सदा बुरा कहा गया है।

इस्लाम हर युग और परिस्थिति में इन्हें लागू करने की शक्ति रखता है, क्योंकि इनके पीछे क्रियान्वयन की वह शक्ति है जो बाह्य दबावों पर नहीं, बल्कि आन्तरिक प्रेरणा पर आधारित है। यह ऐसा प्रहरी है जो किसी मनुष्य को न केवल सामाजिक भय के कारण, बल्कि अपने अंतरतम विवेक के कारण भी नैतिक रहने के लिए प्रेरित करता है।

नैतिक प्रेरणा की प्रकृति

इस्लाम मनुष्य के दिल में यह विश्वास गहरा करता है कि उसका अस्ली संबंध एक सर्वज्ञ और न्यायकारी सत्ता से है। वह चाहे जहां हो, जैसा भी हो, उसका हर विचार, हर कार्य और हर नियत उस सत्ता के संज्ञान में है। यही विश्वास उसे नैतिकता का पालन कराता है, भले ही उसके आसपास कोई देखने वाला न हो। इस्लाम के शब्दों में–

"वह जानता है आंखों की चोरी को और उन बातों को भी जो सीने छिपाए रखते हैं।" (क़ुरआन, 40:19)

जब मनुष्य यह मान लेता है कि उसे अपने जीवन का अंतिम हिसाब उस न्यायालय में देना है जहां झूठ, सिफ़ारिश, रिश्वत, पक्षपात नहीं चल सकते—तो उसके भीतर एक आन्तरिक 'पुलिस चौकी' स्थापित हो जाती है। यह चौकी केवल भय नहीं, बल्कि ईश्वर की प्रसन्नता की चाहत से संचालित होती है। यह वही प्रेरणा है जिसे इस्लाम "तक़्वा" (ईशपरायणता) कहता है।

नैतिकता का सर्वव्यापक प्रभाव

इस्लामी नैतिक व्यवस्था केवल व्यक्तिगत आचरण तक सीमित नहीं है। वह जीवन के प्रत्येक पहलू को नैतिकता के अधीन देखना चाहती है, चाहे वह पारिवारिक जीवन हो, व्यापार हो, राजनीति हो, न्याय व्यवस्था हो, शिक्षा हो या युद्ध। इस्लाम मानता है कि नैतिकता ही जीवन के रथ की लगाम है। यदि यह लगाम इच्छाओं, लोभ या परिस्थितियों के हाथ में दे दी जाए तो समाज अव्यवस्था, अन्याय और अत्याचार की ओर बढ़ जाता है।

इस्लाम मानवता को यह न्यौता देता है कि आओ, हम भलाई को संगठित करें और बुराई को मिलकर मिटाएं। जिन गुणों को हर युग और हर समाज ने अच्छाई माना है, उन्हें स्थापित करें और जिन अवगुणों को हर युग ने बुरा समझा है, उनसे निजात पाएं। इस आह्वान को स्वीकार करने वालों को इस्लाम ने एक उम्मत (समुदाय) का रूप दिया, जो भलाई का आदेश देने और बुराई से रोकने का दायित्व निभाता है।

संतुलन और समावेशिता

इस्लाम की नैतिकता की दूसरी विशेषता उसका संतुलन है। वह केवल कुछ गुणों को उभारकर बाक़ी को छोड़ नहीं देता, न ही किसी एक दिशा में अतिवाद को बढ़ावा देता है। वह सभी नैतिक गुणों को अपने दायरे में लेकर, उनकी सीमा, स्थान और अनुप्रयोग को निर्धारित करता है। उदाहरण के लिए, साहस और क्षमा—दोनों को श्रेष्ठ माना गया है, लेकिन कहां क्षमा करना है और कहां साहस दिखाना है, यह इस्लामी शिक्षाएं तय करती हैं। इस तरह नैतिकता एक व्यावहारिक संतुलन के रूप में सामने आती है, न कि एक अमूर्त आदर्श के रूप में।

जीवन की एकीकृत व्यवस्था

तीसरी विशेषता यह है कि इस्लाम नैतिकता को जीवन की अलग चीज़ नहीं मानता, बल्कि उसे जीवन की आत्मा और धुरी मानता है। इस्लाम यह नहीं कहता कि धर्म केवल इबादतगाहों तक सीमित रहे और नैतिकता केवल किताबों तक। वह चाहता है कि जीवन का हर व्यवहार, राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा, समाज, प्रशासन, सभी नैतिकता की रोशनी में तय हों। इस दृष्टिकोण से इस्लाम एक पूर्ण जीवन-व्यवस्था प्रदान करता है, जिसमें नैतिकता केवल विकल्प नहीं, अनिवार्यता है।

इस्लाम की नैतिक व्यवस्था कोई काल्पनिक या सैद्धांतिक विचार नहीं, बल्कि व्यावहारिक जीवन का जीवंत मार्गदर्शन है। यह व्यवस्था न केवल उच्च आदर्शों की बात करती है, बल्कि उन्हें स्थापित करने के लिए आन्तरिक प्रेरणा, बाहरी अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व, तीनों की समन्वित योजना प्रस्तुत करती है।

इस्लाम कहता है कि नैतिकता कोई अनोखी चीज़ नहीं, वह मानव स्वभाव का अंग है। आवश्यकता केवल इसे पहचानने, उसे दिशा देने और उसके अनुसार जीवन जीने की है। इस्लाम इसी को एक संगठित रूप में प्रस्तुत करता है, एक ऐसी नैतिक व्यवस्था के रूप में जो ईश-प्रसन्नता को लक्ष्य बनाकर जीवन को प्रकाशमान बनाती है। यही इस्लाम का नैतिक योगदान है। स्थायित्व, संतुलन और संपूर्णता के साथ एक नैतिक समाज की स्थापना। ■■

और कहा गया,
"ऐ धरती! अपना पानी निगल जा
और ऐ आकाश! तू थम जा।" अतएव
पानी तह में बैठ गया और फ़ैसला चुका
दिया गया और वह (नाव) जूदी पर्वत
पर टिक गई और कह दिया गया,
"फिटकार हो अत्याचारी
लोगों पर!"
(क़ुरआन, 11:44)

KANTI Monthly, New Delhi
September 2025
Posted on 20-21 August 2025
Published on 18 August 2025
Posted Delhi RMS Delhi-110006

RNI 53372/91
DL(S)-05/3147/2024-2026
LICENSED TO POST WITHOUT PREPAYMENT
License No. U(SE)-73/2024-26
Total Pages with Cover: 52

हज़रत आइशा (रज़ि०)
कहती हैं कि मैंने
अल्लाह के रसूल (सल्ल०)
को कहते हुए
सुना है कि—

अल्लाह तआला ने मेरी ओर
यह वह्य की कि जो आदमी
इल्म की तलाश में निकला
मैं उसके लिए जन्नत का
रास्ता आसान कर दूंगा।
इल्म में ज़्यादती इबादत में
ज़्यादती से बेहतर है।"

(हदीस : बैहक़ी)